चरचा-शतक ।

नमः श्रीसर्वज्ञाय ।

स्वर्गीय कविवर द्यानतरायजीकृत

चरचा-शतक ।

सुगम हिन्दीटीकासहित ।

सम्पादक—

देवरी (सागर) निवासी नाथूराम प्रेमी

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

निर्णयसागर प्रेस बम्बईमें मुद्रित ।

श्रीवीर नि० सं० २४३९

मई, सन् १९१३

प्रथमावृत्ति ।]

[मूल्य

Printed by R. Y Shedge, at the Nirnaya-Sagar
Press, 23 Kolbhat Lane, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor Shri Jain Grantha
Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Near C. P. Tank, Bombay.

निवेदन ।

चरचाशतक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। जैन समाजमें इसका खूब प्रचार है। सूत्र ग्रन्थोके समान इसमे थोडेमे बहुत विषय कहे गये है। इस ग्रन्थको अच्छी तरह पढनेसे जैन शास्त्रोमे अच्छी गति हो जाती है। भाषामें इसकी कई टीकाये है. परन्तु उनमे एक तो बहुतसी त्रुटिया है और दूसरे उनकी रचना वर्तमान पद्धतिके अनुसार नहीं है इसलिए आज कलके लोग उनसे पूरा पूरा लाभ नही उठा सकते। इसलिए मैने यह नवीन प्रयत्न किया है। आशा है कि इसे पाठक पसन्द करेगे और इसका स्वाध्याय करके मेरे परिश्रमको सफल करेगे।

ग्रन्थके मूलपाठके संशोधनमे बहुत सावधानी रक्खी गई है और ग्रन्थकर्त्ताकी मूलभाषाको ज्योंकी त्यो रखनेकी चेष्टा की गई है।

लगभग ४० पद्योकी टीकाका सशोधन जैनसमाजके एक सुप्रसिद्ध विद्वानके द्वारा कराया गया है और शेपका पंडित वंशीधरजी शास्त्रीसे। गढाकोटा निवासी श्रीयुक्त प० दरयावसिंहजी सोधियाने भी एक वार इस टीकाको आद्योपान्त देखनेकी और संशोधन करनेकी कृपा दिखलाई है। उक्त तीनो ही विद्वानोकी कृपासे मै समझता हूॅ इस टीकामे बहुत ही कम भूले रही होगी और इसलिए मै उक्त तीनो महानुभावोका हृदयसे आभार मानता हूं।

प्रमादके वश जो कहीं कहीं भूलें रह गई थी वे प्रारम्भमें शुद्धिपत्र लगाकर ठीक कर दी गई है। ग्रन्थका स्वाध्याय करनेके पहले पाठकोंको चाहिए कि उन्हे यथास्थान सुधार लेवे।

हीरावाग, वम्वई
७—४—१९१२

नाथूराम प्रेमी।

पद्योंकी अकारादि क्रमसे सूची ।

पर रक्खे हुए एक आवलेके समान और हाथकी रेखा-ओंके समान अपनी नजरसे देखते हैं; जीवादि छहों द्रव्योंके भूत भविष्यत् वर्तमानकाल सम्बन्धी अनन्तानन्त गुणों और अनन्तानन्त पर्यायोंको वर्तमानकी नाईं अपने ज्ञानसे इस प्रकारसे प्रकाशित करते हैं. जिस तरह दर्पण (आरसी) में सब घटपटादि पदार्थ एक साथ प्रकाशित होते हैं और जिन्होंने सकल महातम अर्थात् कर्मोंका महान अन्धकार अथवा माहात्म्य नष्ट कर दिया है । इस लोकमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पांचों परमेष्ठी विघ्नोंके हरण करनेवाले तथा मंगलके करनेवाले हैं । इसलिये उन्हें मन वचन कायसे पृथ्वीपर मस्तक लगाकर आनन्दपूर्वक धोक देता हूं अर्थात् प्रणाम करता हूं ।

इस छप्पयके पहले चार चरणोंमें सर्वज्ञ देवकी प्रशंसा की गई है और शेष दोमें मंगलस्वरूप पांचों परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है ।

श्रीनेमिनाथस्वामीकी स्तुति ।

वंदों नेमि जिनंद चंद, सबको सुखदाई ।
बल नारायणवंदि, मुकुटमणि सोभा पाई ॥

---

१ जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । २ ‘दर्पण तल प्रकाश नाम मल कर्म प्रणाश’का अर्थ इस तरहसे भी होता है कि, जिस तरह दर्पणके ऊपरका मल निकल जानेसे उसमें सब पदार्थ झलकते हैं उसी प्रकारसे कर्म मलके नाश हो जानेका ही यह माहात्म्य है कि, सर्वज्ञ ज्ञानमें छहों द्रव्य झलकते हैं । ३ परमपदमें जो तिष्ठे, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं ।

व्यंतर इंद्र वतीस, भवन चालीसौं आवैं।
रवि ससि चक्री सिंह, सुरग चौवीसौं ध्यावैं॥
सव देवनके सिरदेवजिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हालपै, गुण अनंत समुदाय हौ॥ २

चरचाशतकपर हरजीमल्लराय पानीपतनिवासीकी जो टप्पारूप टीका है, उसमे दूसरे छप्पयके आगे यह एक छप्पय और भी मिलता है, परन्तु एक तो मूल पुस्तकोंमे यह कहीं मिलता नहीं है, दूसरे इसके न केवल अन्तके दो चरण ही दूसरे छप्पय के समान हैं, किन्तु भाव भी प्राय एकसा है। इस लिये हमारी समझमें यह प्रक्षिप्त है। अनुमान होता है कि, कविने पहले इसे वनाया होगा, और पीछे सशोधनके समय पसन्द न आनेसे अपनी प्रतिपरसे इसको काटकर उसके स्थानमे दूसरा लिख दिया होगा। पीछे नकल करनेवालोंने कटा हुआ समझ कर दोनोंको लिख लिया होगा। उस छप्पय-को हम यहा अर्थसहित लिख देते है —

इद फनिंद नरिंद, पूजि नमि भक्ति वढ़ावैं।
वलि नारायण मुकटवंदि, पद सोभा पावैं॥
विन जानैं जिय भमैं, जानि छिन सुरग वसावैं।
ध्यान आन रिधिवान, अमरपद आप लहावैं॥
सव देवनके सिरदेव जिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हाल पै, गुन अनंत समुदाय हौ॥

अर्थ—हे नेमिनाथ भगवन्! आपको इन्द्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्र पूज करके तथा नमस्कार करके अपनी भक्तिको वढाते हैं, और वलभद्र तथा कृष्ण नारायणके मुकुट आपके चरणोंकी वन्दना करके शोभा पाते हैं। आपको जाने विना यह जीव इस जन्ममरणरूप ससारमें भ्रमण करता रहता है, जानकरके वा श्रद्धान करके क्षणभरमे स्वर्ग पहुच सकता है, और ध्यान करके इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी ऋद्धिया प्राप्त करके आप स्वय अमरपद वा मोक्षपदको प्राप्त होता है। आप सव देवोंके सिरताज देव हैं, सुगुरुओंके महान गुरु हैं और अनत गुणोंके समुदाय हैं। मेरे हालपर दयाल हूजिये अर्थात् मुझे दुखी देखकर दया कीजिये।

अर्थ—मैं उन वीसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवानको नमस्कार करता हूं, जो चन्द्रमाके समान सव जीवोंको सुखके देनेवाले हैं, और जिनकी वन्दना करके वलभद्र[1] और श्रीकृष्णनारायणके[2] मुकुटोंमें लगी हुई मणियोंने अतिशय शोभा पाई है अर्थात् जिस समय वलनारायण नमस्कार करनेके लिये अपना मस्तक नवाते थे, उस समय उनके मुकुटोंके रत्न भगवानके चरणोंके नखोंकी कांतिसे और भी अधिक चमकने लगते थे, जिनका व्यंतर देवोंके बैत्तीस[3], भवनवासियोंके चालीस[4], ज्योतिष्कोंके दो सूर्य[5] चन्द्र, मनुष्योंका एक चक्रवर्ती, पशुओंका एक सिंह और कल्पस्वर्गोंके[6] चौवीस इस प्रकार सव मिलाकर सौ इन्द्र ध्यान करते हैं, और इसलिये हे जिनदेव आप सव देवोंके सिरदेव अर्थात् शिरोमणि देव हैं, गणधरादि सुगुरुओंके गुरुराज हैं, और अनन्तानन्त गुणोंके समूहरूप हैं। आप मेरे हालपर अर्थात् संसार भ्रमणकी दुर्दशापर दयालु हूजिये—मुझे कृपाकरके इस दुःखसे छुड़ा दीजिये।

---

१ नववे पद्म नामक वलभद्र। २ नववे नारायण। ३ व्यन्तर आठ प्रकार के हैं और उनके प्रत्येक भेदमे दो २ इन्द्र तथा दो २ प्रतीन्द्र हैं, इसतरह वत्तीस व्यन्तरेन्द्र। ४ भवनवासी दश प्रकारके है और प्रत्येकमें दो २ इन्द्र तथा प्रतीन्द्र है। ५ सूर्य प्रतीन्द्र है और चन्द्र इन्द्र है। ६ पहिले चार स्वर्गोंमें चार इन्द्र और चार प्रतीन्द्र=८, पाचवे छट्ठेमें १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, सातवें आठवेंमें १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, नववेसे वारवे तकमें २ इन्द्र, २ प्रतीन्द्र =४, तेरहवेसे सोलहवेतकमें ४ इन्द्र ४ प्रतीन्द्र=८, इस तरह १६ स्वर्गोंमें २४ इन्द्र हैं।

अस्ति वस्तु परमेय, अगुरु लघु दरव प्रदेसी।
चेतन अमूरतीक, आठ गुन अमल सुदेसी।
उतकृष्ट जघन अवगाह,
पदमासन खरगासन लसैं।
सब ग्यायक लोक अलोकविध,
नमौं सिद्ध भवभय नसैं॥ ४॥

अर्थ—सिद्ध भगवान् तीनलोकके ईश्वर हैं, व्यवहार-नयसे तनुवातवलयके शीसपर अर्थात् अन्तमें जगतके ईश्वररूपमें विराजमान हैं, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं, व्यवहार नयकी अपेक्षा सम्यक्-ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरु लघु, और अव्यावाध इन आठ विशेष गुणरूप हैं, तथा अनन्तानन्त गुणोंसे शोभायमान है, अस्तित्व[1], वस्तुत्व[2] प्रमेयत्व[3], अगुरुलघुत्व[4], द्रव्यत्व[5], प्रदेशवत्व[6], चेतनत्व, और

---

१ अस्तित्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश नहीं हो। २ वस्तुत्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व होता है। जैसे घडेकी अर्थक्रिया जलधारण है। इस जलधारण क्रियाको घडेका वस्तुत्व कहेंगे। ३ प्रमेयत्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी भी ज्ञानका विषय होता है। ४ अगुरुलघुत्व—जिसके निमित्तसे द्रव्यका द्रव्यत्व बना रहता है अर्थात्, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो जाता है—एक गुण दूसरे गुण-रूप नहीं हो जाता है और एक द्रव्यके अनन्त गुण बिखरकर जुदे २ नहीं हो जाते हैं। ५ द्रव्यत्व—जिसके योगसे द्रव्यकी पर्यायें हमेशा पलटती रहती है। ६ प्रदेशवत्व—जिसके योगसे द्रव्यका कोई न कोई आकार अवश्य रहता है।

अमूर्तत्व इन आठ निर्मल सामान्य गुणोंसहित हैं, निश्चयनयकी अपेक्षासे अपने ही प्रदेशोमें विराजमान हैं, उत्कृष्ट सवा पांच सौ धनुपकी और जघन्य साढ़े तीन हाथकी अवगाहनावाले है, खड्गासन या पद्मासनसे शोभित रहते है, और लोक तथा अलोकके समस्त पदार्थोंको जानते है। ऐसे सिद्धोंको मै नमस्कार करता हूं, जिससे मुझे भवभ्रमणका भय न रहे अर्थात् मुझे फिर संसारमें रुलना न पड़े।

आचार्य उपाध्याय सर्व साधुकी स्तुति।

आचारज उवझाय, साधु तीनौं मन ध्याऊं।
गुन छतीस पच्चीस वीस, अरु आठ मनाऊं॥
तीनौंकौ पद साध, मुकतिकौ मारग साधैं।
भवतनभोग विराग, राग सिव ध्यान अराधैं॥
गुनसागर अविचल मेरु सम, धीरजसौं परिसह सहै
मैं नमौं पाय जुग लाय मन, मेरौ जिय वांछित लहै ५

अर्थ—जिनके क्रमसे छत्तीस, पच्चीस और अट्ठाईस गुण

---

१ अमूर्त्तत्व—पुद्गलके स्पर्श आदि चार गुणोंसे रहित। २ सिद्धान्तमे ८४ आसन कहे है, परन्तु मोक्ष केवल खड्गासन और पद्मासनसे ही होता है। ३ बारह तप, छह आवश्यक, पाच आचार, दश धर्म और तीन गुप्ति, सब छत्तीस गुण आचार्योंके होते हैं। ४ ग्यारह अग और चौदह पूर्वका जानना ये पच्चीस गुण उपाध्यायोंके है। ५ पाच महाव्रत, पाच समिति, पाच इन्द्रियोका निरोध, छह आवश्यक क्रियाएँ, बालोंका उखाड़ना, वस्त्रोंका त्याग (नग्नता), स्नानत्याग, दन्तधावनत्याग, भूमिपर सोना, और खड़े २ एक बार अल्प आहार लेना, ये अट्ठाईस मूल गुण साधुओंके है।

हैं, मैं उन आचार्य, उपाध्याय और साधुओंका मनमें ध्यान करता हूं और उन्हें मनाऊं हूं अर्थात् उनकी सत्कार पूजनादि करता हूं। इन तीनोंको साधुका पद है अर्थात् आचार्य उपाध्याय और साधु ये सब साधु कहलाते हैं। क्योंकि ये रत्नत्रयरूप मोक्षके मार्गको साधते हैं। ये संसार, देह और पंचेन्द्रियके विषयोंसे तो अतिशय विरक्त रहते हैं, परन्तु मोक्षसे राग रखते हैं। ध्यानकी अराधना करते हैं, गुणोंके सागर होते हैं, सुमेरु पर्वतके समान अविचल (अचल) होते हैं, और धीरजके साथ बड़ी बड़ी परीसहोंका सहन करते हैं। मैं उनके चरणोंको मन लगाकर नमस्कार करता हूं, जिससे मेरा मोक्षप्राप्तिरूप मनोरथ सफल हो।

अलोक और लोकका स्वरूप।

अचल अनादि अनंत, अकृत अनमिट अखंड सब
अमल अजीव अरूप, पंच नहिं इक अलोक नभ॥
निराकार अविकार, अनंत प्रदेस विराजै।
सुद्ध सुगुन अवगाह, दसौं दिस अंत न पाजै॥

---

१ दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार इन पाच आचारोंको जो आप आचरण करें और दूसरोंको आचरण करावें, उन्हें आचार्य कहते हैं। २ जो ग्यारह अंग चौदह पूर्व आप पढें तथा औरोंको पढ़ावें, वे उपाध्याय हैं। ३ पाच इन्द्री और मनको वशमें करके मोक्ष मार्गको जो साधें, वे साधु हैं। ४ धर्मध्यान और शुक्लध्यान। धर्मध्यानके चार भेद, आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। शुक्लध्यानके भी चार भेद, १ पृथक्त्ववितर्कवीचार, २ सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति, ३ एकत्ववितर्कवीचार और ४ व्युपरतिक्रियानिवृत्ति।

या मध्य लोक नभ तीन विध,
अकृत अमिट अनईसरो ।
अविचल अनादि अनअंत सब,
भाख्यो श्रीआदीस्वरो ॥ ६ ॥

अर्थ—श्रीआदीश्वर भगवानने अर्थात् पहिले तीर्थंकर श्रीऋषभदेवने लोक अलोकका स्वरूप इस प्रकार कहा है—अलोकाकाश अचल है, अनादि कालसे है, अनन्त कालतक रहेगा, अकृत है अर्थात् उसे किसी ब्रह्मा आदि ईश्वरने नही बनाया है—स्वयंसिद्ध है, अनमिट है अर्थात् कोई महादेवादि उसका संहार नही कर सकते है—मिटा नही सकते है, अखंड है, सर्वत्र फैला है, निर्मल है, अजीव है अर्थात् चेतनारहित जड़ है, अमूतीक है, उसमे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य नही है, गोल त्रिकोणा आदि किसी प्रकारका उसका आकार नही है, विकाररहित शुद्ध द्रव्य है, अनन्तानन्त प्रदेशोसे शोभित है, शुद्ध है, अवगाहना वा स्थान देना यह जिसका असाधारण गुण है, और जिसका नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम आदि दशों दिशाओंमे कभी अन्त नहीं आता है। इस महान् अलोकाकाशके वीचों वीच लोकाकाश है, जो ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोकके भेदसे तीन प्रकारका है। इस लोकको भी किसीने रचा नही है, कोई मिटा नही सकता है, कोई इसका स्वामी नहीं है, अचल है, अनादि है और अनन्त भी है।

तीन लोकका आकार।

[illegible] ([illegible])।

पूरव पच्छिम सात-नर्कतलै राजू सात,
आगें घटा मध्यलोक राजू एक रहा है।
ऊंचे बढ़ि गया ब्रह्म लोक राजू पांच भया,
आगें घटा अंत एक राजू रहा है॥
दक्खिन उत्तर आदि मध्य अंत राजू सात,
ऊंचा चौदै राजू षट द्रव्य भरा लहा है।
असंख्यात परदेस मूरतीक कियौ भेस,
करै धरै हरै कौन स्वयंसिद्ध कहा है॥७॥

अर्थ—सातवें नरकके नीचे (जहां कि त्रस जीव नहीं हैं-निगोद जीव भरे हैं) इस लोककी चौड़ाई पूर्वसे पश्चिम-तक सात राजू है। उससे ऊपर क्रमसे घटता गया है, सो मध्य लोकमें सुदर्शन मेरुकी जड़में केवल एक राजू चौड़ा रह गया है। आगे फिर विस्तृत हो गया है, सो ब्रह्म स्वर्गके अन्तमें पांच राजू होकर फिर घटने लगा है और अन्तमें सिद्धालयके ऊपर फिर एक राजू रह गया है। (यह जगह २की पूर्वसे लेकर पश्चिमतक चौड़ाई बत-लाई गई। अब उत्तर दक्षिणकी मोटाई बतलाते हैं।) आदि मध्य और अन्तमें सब जगह अर्थात् मूलसे लेकर लोकशिखरके अन्ततक सर्वत्र सात राजू मोटाई (उत्त-

---

१ सात राजूकी ऊंचाईपर। २ नीचेसे साढ़े दस राजूकी ऊंचाईपर।

रसे दक्षिण) है, और ऊंचाई आदिसे अन्ततककी चौदह राजू है। इस लोकमे जीव, अजीव. धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य भरे हुए है। इसके असंख्यात प्रदेश है (एक परमाणु जितना आकाश रोकता है, उसे एक प्रदेश कहते है।) इसने मूर्तीक वेप धारण किया है, अर्थात् यद्यपि लोकाकाश मूर्तिरहित है—स्पर्शरसगंधवर्ण-रहित है, तो भी मूर्तीक अर्थात् डेड़ मुरज (मृदंग) आकार है। यह स्वयंसिद्ध है। इसको न कोई वनाता है, न कोई धारण करता है और न कोई संहार करता है।

तीनौं लोक तीनौं वातवलै वेढ़े सव ठौर।
वृच्छछाल अंडजाल तनचाम देखिए।
अधोलोक वेत्रासन मध्यलोक थाली मन,
ऊरध मृदंग गनि ऐसो ही विसेखिए॥
कर कटि धारि पाउंकौं पसारि नराकार.
डेढ़ मुरज आकार अविनासी पेखिए।
घरमाहिं छीकौ जैसें लोक है अलोक वीचि.
छींकेकौं अधार यह निराधार लेखिए॥८॥

अर्थ—तीनों लोक सव जगह घनोदधि वातवलय

---

१ जहां जीव अजीवादि पांच द्रव्ये नहीं है, केवल एक आकाश द्रव्य है, उसे अलोकाकाश कहते है। २ मूलसे सात राजूकी ऊंचाई तक अधोलोक है, सुमेरपर्वतकी ऊंचाईके वरावर एक लाख चालीस योजन मध्य लोक है और सुमेरुके ऊपर एक लाख चालीस योजन कम सात राजू [illegible] है।

घनवातवलय और तनुवातवलय इन तीन वातवलयोंसे इसतरह घिर रहे हैं, जैसे वृक्ष छाल (वल्कल)से, अंडा अपने ऊपरकी जालीसे और जीवोंके शरीर चमड़ेसे लिपटे वा घिरे दिखलाई देते हैं। अभिप्राय यह कि, सारा लोक घनोदधि वातवलयसे घिरा हुआ है, घनोदधि वातवलय घन वातवलयसे घिरा है और इसी प्रकार घनवातवलय तनुवातवलयसे वेष्टित है । इन तीन लोकोंमेंसे अधोलोक वेत्रासनके अर्थात् वेतके वने हुए आसनके समान है, मध्य लोक थालीके समान है, और ऊर्द्ध्वलोक वीचमें चौड़ा और ऊपर नीचे संकीर्ण आकार-वाले मृदंगके आकारका है । दोनों हाथोंको कमरपर रखके और दोनों पैरोंको तिरछे फैलाकर खड़े होनेसे मनुष्यका जैसा आकार होता है अथवा एक आधे मृदं-गको औंधा रखके उसपर एक पूरे मृदंगके रखनेसे जैसा आकार वनता है, वैसा समूचे लोकका आकार है। यह लोक अविनाशी है, अर्थात् सदासे है और सदा रहेगा। जिस तरह घरमें छींका लटका रहता है, उसी प्रकारसे अनन्त अलोकाकाशके वीचमें यह लोक लटक रहा है, अन्तर सिर्फ इतना है कि, छींका एक रस्सीके आधारसे

---

१ अधोलोक अपनी तलीमे सात राजू चौडा और सातराजू मोटा इस तरह चौकोर वा समचौरस है। २ मध्य लोकका स्थंडिल अर्थात् चबूतरा चौकोर है। थालीकी उपमा स्वयंभूरमण समुद्रतककी ही विवक्षासे ग्रन्थकारने दी है। समचौकोर क्षेत्रमें वृत्त खींचनेपर जो चार कौने शेप रह जाते हैं, वे इस दृष्टान्तमें अपेक्षित नहीं है। उनकी अपेक्षा लेनेसे मध्यलोक चौकीके आकार हो जाता है। ३ मृदंगके आकार ऊंचाईरूप।

लटका रहता है, परन्तु लोक निराधार है,-उसको कोई सहारा नहीं है। अर्थात् लोक घनोदधि वातवलयके आधार है, घनोदधि घनवातवलयके और वह तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधार है और आकाश स्वप्रतिष्ठित है-उसे किसीका आधार नहीं है। क्योंकि वह सर्वव्यापी है। तनुवातके अन्ततक लोक-संज्ञा है।

तीन सौ तेताल राजू घनाकार सब लोक,
घनोदधि घन तनुवातके अधार है।
तामैं चौदै चौखूंटी त्रसनाली त्रस थावर,
परैं तीनसौ उन्तीस थावर सदा रहै।
दच्छिन उत्तर डोरी वियालीस राजू सव,
पूरव पश्चिम उनतालकौ विचार है।
राजू अंस वीसासौ तेतालीस अधिक कहे,
लोक सीस सिद्धनिकौं मेरौ नमोकार है॥९

अर्थ—सारे लोकका घनफल ३४३ राजू है। (लम्बाई चौड़ाई और मोटाईके गुणनफलसे जो निकलता है, उसे घनफल कहते है। यदि समस्त लोकके एक २ राजू लम्बे चौड़े और मोटे खंड किये जावे, तो उनकी संख्या ३४३ होगी) और (पहिले कहे अनुसार) यह लोक घनोदधि वात, घनवात और तनुवातवलयके आधारसे ठहरा हुआ है। इसके वीचमे १४ राजू ऊंची और

चौकूंटी अर्थात् एक राजू लम्बी एक राजू चौड़ी (चौकं-सरीखी) त्रसनाली है, जिसमें त्रस और स्थावर जीव रहते हैं और इस त्रसनालीके बाहिर शेष ३२९ राजूके स्थानमें केवल स्थावर जीव रहते हैं। सब लोकाकाशकी दक्षिण उत्तर ढोरी ४२ राजू है अर्थात् लोकके नीचेकी और ऊपरकी मोटाई सात २ राजू, और दोनों तरफकी ऊंचाई चौदह २ राजू इस तरह ४२ राजू है और पूर्व पश्चिम ढोरी कुछ अधिक ३० राजू अर्थात् ३०.[illegible] राजू है। ऐसे विस्तारवाले लोकके शीशपर अर्थात् ऊपर (तनुवातवलयमें) जो सिद्ध भगवान् विराजमान हैं, उनको मेरा नमस्कार है।

इस संख्यामें जो पूर्व पश्चिमकी ढोरी ३०से [illegible] अधिक बतलाई है, इसका कारण क्षेत्रगणितसे इस प्रकार स्पष्ट होता है:—नकशेमें क से घ तककी रेखा ७ राजू है और क से ख तक तथा ग से घ तक तीन २ राजू हैं, क्योंकि ख ग एक राजू है। और ख से च तक तथा ग से छ तककी रेखाएं हमको मालूम हैं कि सात २ राजू हैं। इस तरह हमको क ख च तथा ग घ छ त्रिभुजोंकी दो २ रेखाओंकी लम्बाई मालूम है और क च तथा घ छ

---

१ लोकका कुल घनफल ३४३ राजू है। इसमें त्रस नाड़ीका घनफल १४×१×१=१४ निकाल दीजिये, तो ३२९ शेष रह जावेंगे। २ एकेन्द्री जीवोंको अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति कायके जीवोंको स्थावर कहते हैं और दो इन्द्रीसे लेकर पंचेन्द्री जीवों तकको त्रस जीव कहते हैं। ३ घेरा या परिधि।

करणोंकी लम्वाई निकालना है। कोटिके वर्गमे भुजाके वर्गको जोड़नेसे जो संख्या आती है, उसका वर्गमूल निकालनेसे करण मालूम हो जाता है। इस नियमके अनुसार ७×७+३×३=५८ का वर्गमूल क च रेखा हुई और इतनी ही घ ठ हुई । अव इन दोनोंका जुदा २ वर्गमूल नही निकाल कर इकट्ठा करके निकालनेसे $१५\frac{७}{३०}$ हुआ। ठीक इसी रीतिसे च छ, छ ज, झ ट, और ट ठ रेखाओंकी लम्वाई निकालनेसे एकत्र ६५ का वर्गमूल $१६\frac{१}{८}$ हुआ। अव $१५\frac{७}{३०}+१६\frac{१}{८}$ मे लोकके नीचे की (क घ की) लम्वाई ७ राजू और लोकके ऊपरकी (ज झ) की लम्वाई १ राजू जोड़ने से $३९\frac{४३}{१२०}$ हो जावेगे, जो कि ३९ से $\frac{४३}{१२०}$ अधिक हैं।

ऊखलमैं छेक वंसनाल लोक त्रसनाली,
    ऊंची चौदै चौरी एक राजू त्रस भरी है।
यामैं त्रस वाहिर थावर आउ वाँधी कहूं,
    मर्नसौं अगाऊ गयौ त्रस चाल करी है॥
वाहिर थावर कोउ त्रस आउ वांधी होउ,
    मर्न समै कारमान त्रसरीति धरी है।
केवल समुद्घात त्रसरूप तहां जात,
    तीनौं भांति उहां त्रस जिनवानी खिरी है १०

चौखूंटी अर्थात् एक राजू लम्बी एक राजू चौड़ी (पानि-
सरीखी) त्रसनाली है, जिसमें त्रस और स्थावर जीव
रहते हैं और इस त्रसनालीके बाहिर शेष ३२९ राजूमें
स्थानमें केवल स्थावर जीव रहते हैं। सब लोकाकाशकी
दक्षिण उत्तर [३]डोरी ४२ राजू है अर्थात् लोकके नीचेकी
और ऊपरकी मोटाई सात २ राजू, और दोनों तरफकी
ऊंचाई चौदह २ राजू इस तरह ४२ राजू है और पूर्व
पश्चिम डोरी कुछ अधिक ३९ राजू अर्थात् ३९ ४३/७०
राजू है। ऐसे विस्तारवाले लोकके सीसपर अर्थात् ऊपर
(तनुवातवलयमें) जो सिद्ध भगवान् विराजमान हैं,
उनको मेरा नमस्कार है।

इस सवैयामें जो पूर्व पश्चिमकी डोरी ३९से ४३/७० अधिक
बतलाई है, इसका कारण क्षेत्रगणितसे इस प्रकार स्पष्ट
होता है:—नकशेमें क से घ तककी रेखा ७ राजू है
और क से ख तक तथा ग से घ तक तीन २ राजू है,
क्योंकि ख ग एक राजू है। और ख से च तक तथा ग
से ठ तककी रेखाएं हमको मालूम हैं कि सात २ राजू हैं।
इस तरह हमको क ख च तथा ग घ ठ त्रिभुजोंकी दो
२ रेखाओंकी लम्बाई मालूम है और क च तथा घ ठ

---

१ लोकका कुल घनफल ३४३ राजू है। इसमें त्रस नालीका घनफल १४×१×१=१४ निकाल दीजिये, तो ३२९ शेष रह जावेंगे। २ एकेन्द्री जीवोंको अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति कायके जीवोंको स्थावर कहते हैं और दो इन्द्रीसे लेकर पंचेन्द्री जीवों तकको त्रस जीव कहते हैं। ३ घेरा वा परिधि।

करणोंकी लम्बाई निकालना है। कोटिके वर्गमे भुजाके वर्गको जोड़नेसे जो संख्या आती है, उसका वर्गमूल निकालनेसे करण मालूम हो जाता है। इस नियमके अनुसार ७×७+३×३=५८ का वर्गमूल क च रेखा हुई और इतनी ही घ ठ हुई। अव इन दोनोंका जुदा २ वर्गमूल नही निकाल कर इकट्ठा करके निकालनेसे १५ ७/३० हुआ। ठीक इसी रीतिसे च छ, छ ज, झ ट, और ट ठ रेखाओंकी लम्वाई निकालनेसे एकत्र ६५ का वर्गमूल १६ १/८ हुआ। अव १५ ७/३०+१६ १/८ मे लोकके नीचे की (क घ की) लम्वाई ७ राजू और लोकके ऊपरकी (ज झ) की लम्वाई १ राजू जोड़ने से २९ ४३/१२० हो जावेगे, जो कि ३९ से ४३/१२० अधिक हैं।

ऊखलमैं छेक वंसनाल लोक त्रसनाली,
　　ऊंची चौदै चौरी एक राजू त्रस भरी है।
यामैं त्रस वाहिर थावर आउ वाँधी कहूं,
　　मर्नसों अगाऊ गयौ त्रस चाल करी है॥
वाहिर थावर कोउ त्रस आउ वांधी होउ,
　　मर्न समै कारमान त्रसरीति धरी है।
केवल समुद्घात त्रसरूप तहां जात,
　　तीनौं भांति उहां त्रस जिनवानी खिरी हैं १०

अर्थ—ऊखलीमें जिस तरह एक पोली बांसकी नली खड़ी कर दी हो, इस तरह लोकाकाशके बीचमें त्रसनाली है जो चौदह राजू ऊंची और एक राजू चौड़ी है, तथा त्रसजीवोंसे भरी हुई है। ये त्रसजीव यद्यपि त्रसनाड़ीके ही भीतर होते हैं—बाहिर कहीं भी इनका अस्तित्व नहीं कहा है, तो भी आगे कहे हुए तीन प्रकारोंमे त्रसजीव त्रसनाड़ीसे बाहिर भी पाये जाते हैं,—एक तो कोई त्रस-जीव जब स्थावरजीवकी आयुका बंध करता है, तब वह

---

१ वासकी नलीकी उपमा पोलेपनके कारण दी है। परन्तु त्रसनाली गोल नहीं है। चौपड़के पासेकी नाई लम्बी चौखूटी है। २ त्रसनाली सामान्यरूपसे १४ राजू लम्बी है। परन्तु वारीकीसे देखा जाय, तो कुछ कम तेरा राजू है। क्योंकि सातवे नरकके नीचे एक राजूमें त्रस जीव नहीं हैं—निगोदिया हैं, और सातवे नरककी भूमिकी कुछ कम आधी मोटाईमें और सर्वार्थसिद्धिके ऊपर इक्कीस योजनमें त्रस जीव नहीं हैं। और त्रसनाली उतनीहीको कहना चाहिये, जितनेमें त्रस जीव हों। ३ यहा 'त्रस' शब्द उपलक्षण है। अर्थात् त्रसनाडीमें केवल त्रस जीव ही नहीं भरे है, पृथ्वी आदि पाच प्रकारके स्थावर भी हैं। परन्तु त्रसनाडीके बाहिर अन्यत्र कहीं भी त्रसजीव नहीं हैं, इसलिये त्रसनाडीमें त्रस जीव भरे हैं, ऐसा कहा है। और त्रसनाडीमें प्रधानता भी त्रसोंकी ही है। ४ जिस आयुको जीव भोगता है, उसके तीन भागोंमेंसे दो भाग भोग लेनेपर आगामी भवकी आयु बांधनेकी योग्यता होती है। अर्थात् दो भाग व्यतीत होते ही आगामी भवकी आयु बँध जाती है। परन्तु यदि उस समय नहीं बँधे, तो एक भाग जो बाकी रह गया है, उसके तीन भागोंमेंसे दो भाग बीत जानेपर बँधती है और यदि उस समय भी नहीं बँधती है, तो फिर जो शेष रहती है, उसके तीन भागोंमेंसे दो बीतनेपर बँधती है, इसतरह अधिकसे अधिक आठ अपकर्षण होते हैं। यदि पहिले आयु न बँध पाई हो, तो मरणसे अन्तर्मुहूर्त पहिले तो अवश्य ही बंध जाती है।
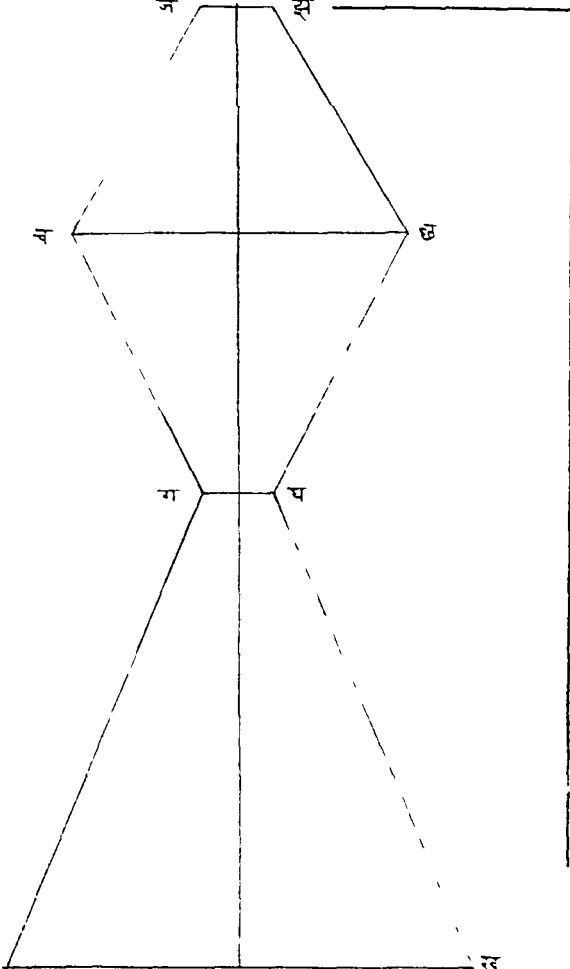
तीन लोकका पूर्व पश्चिमका नकशा पृष्ट १०
ज
झ
च
छ
ग
घ
क
ख
दृष्टव्य- क से ख तक ७ राजू, (सातवें नरकके नीचे, ग से घ तक १ राजू
सुदर्शन मेरुकी जड़में) च से छ तक ५ राजू (ब्रह्म स्वर्गके अन्तमें)
ज से झ तक १ राजू (ऊपर)

ब ख ग म

अ क घ ड

त्रसनाड़ी-क ख ग घ । दक्षिण उत्तर हांग- अ से ब तक १४ राजू, ब से म तक ७ राजू, म से ड तक १४ राजू. और ड से अ तक ७ राजू, सब मिलाकर ४२ राजू. स्थावरजीव- त्रसनाड़ीसे बाहर समस्त लोकमें
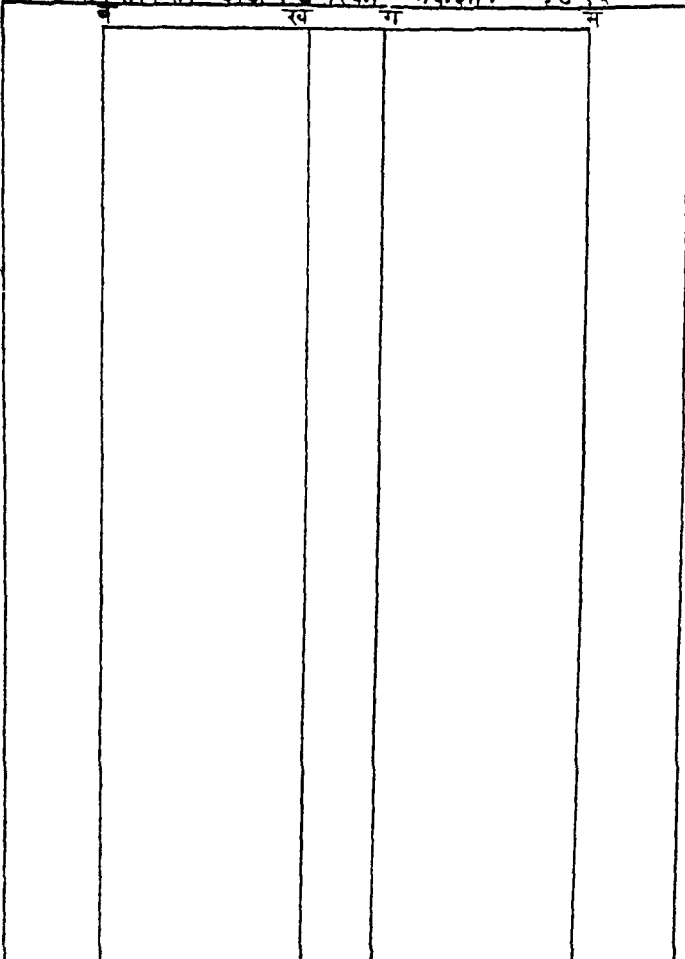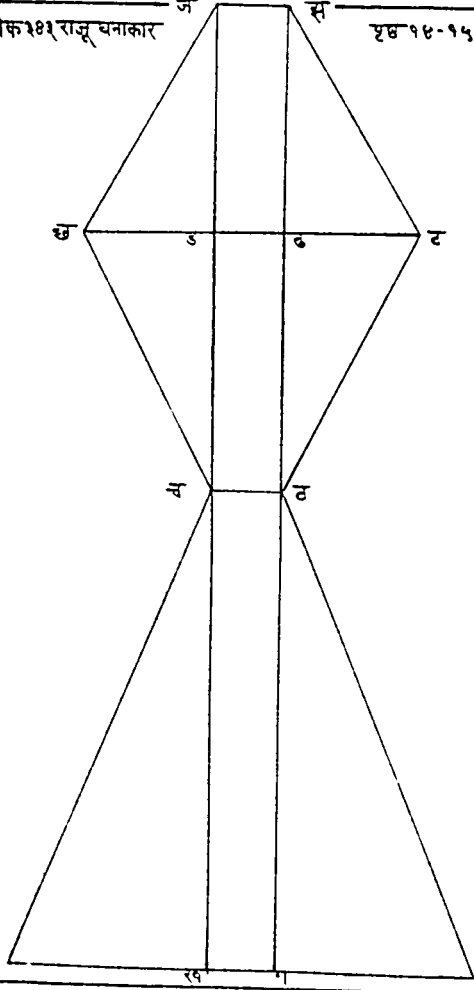
क ख रेखा ३ राजू । ख ग १ राजू । ग घ ३ राजू । क घ ७ राजू । ख ज झ ग त्रसनाडी । ख ज, ग झ, च ज, ट झ चारों सात सात राजू । च ढ और ड ज साढे तीन तीन राजू । छ ड और ढ ट दो दो राजू ।

त्रस आयुके अन्तर्मुहर्तकाल वाकी रहनेपर मरणके समय मारणान्तिक समुद्धात करता है । उस समय उसके कुछ प्रदेश त्रसनाड़ीसे वाहिर जहां वह स्थावरपर्याय धारण करेगा, वहां जाते है, सो इस अपेक्षासे त्रसनाड़ीसे वाहिर त्रसजीवोंका अस्तित्व हुआ। दूसरे त्रसनाड़ीसे वाहिरका कोई स्थावर जव त्रस पर्यायकी आयुका वंध करता है, तव मरणके समय कार्माण शरीरसहित त्रस-नामा नाम कर्मके उदयसे त्रस होकर त्रसनाड़ीके प्रति गमन करता है, उस समय विग्रह गतिमे त्रसनाड़ीके वाहिर त्रसका अस्तित्व हुआ और तीसरे केवलीभगवान जव केवलसमुद्धात करते है. तव उनके प्रदेश त्रसनाड़ी और उससे वाहिर सर्वत्र लोकमे व्याप्त हो जाते हैं, सो इस तरह भी त्रसनाड़ीसे वाहिर त्रसका अस्तित्व हुआ। क्योंकि केवलीभगवान् त्रस है। इस तरह तीन प्रकारसे त्रसनाड़ीके वाहिर भी त्रस जीवोंका अस्तित्व जिनवाणीमे वतलाया है।

तीनो लोकोका घनफल ।

छप्पय ।

पूरव पच्छिमतलैं सात, मधि एक वखानी ।
पंच स्वर्गमैं पांच, अंतमैं एक प्रवांनी ॥
चहुं मिलाय चहुं अंस, तीनि साढ़े परमानौ ।
दच्छिन उत्तर सात, साढ़ चौवीस वखानौ ॥

यह अधोलोकका सब कहा, घनाकार जिनधरममैं
मति परौ नरकमैं पापकरि, रहौ सुमारग परममैं ॥१२

अर्थ—लोकके नीचे पूर्वपश्चिम चौड़ाई सात राजू और मध्यलोकमे एक राजू कही है। इन दोनोंको मिलानेसे आठ. और आधा करनेसे चार राजू होते है। इनमें दक्षिण उत्तर मुटाई सात राजूका गुणा करनेसे अठ्ठाइस २८ राजू होते हैं और उनमे अधोलोककी ऊंचाई सात राजूका गुणा करनेसे १९६ राजू होते है। जैनधर्ममे अधोलोकका सारा घनफल यही १९६ राजू कहा है। अधोलोकमे जीव पापके उदयसे उत्पन्न होता है। इससे हे भव्यप्राणियो, पाप करके नरकमें मत पड़ो, उत्कृष्ट सुमार्ग अर्थात् जिनधर्मभे रहो। वीतराग मार्गकी उपासना करते रहो।

ऊर्द्धलोकका घनफल।

मध्यलोक इक ब्रह्म, पांच दुहुं मिले भए पट।
पूरव पच्छिम दिसा, अर्ध करि तीन राजु रट॥
दच्छिन उत्तर सात, गुणी इकईस वखानी।
ऊंचे साढ़े तीन, साड़ तेहत्तरि जानी॥

---

१ निगोदसे लेकर मेरुपर्वतकी जडतक अधोलोक है, जो ७ राजू ऊंचा है। चित्राभूमिके नीचे खरभाग, पंकभाग, सातों नरक और निगोद सब अधोलोक या पाताललोकमें गर्भित है।

एक भाग रहता है, उसमे उत्कृष्ट अवगाहनाके धारण करनेवाले अनन्त सिद्धोंका निवास है।

तीन लोकके ११२ पटलोका वर्णन।

छप्पय।

एक तीन पन सात; और नव ग्यार तेर जिय।
इकतिस सात सु चारि, दोय इक एक तीनि तिय॥
तीनि तीनि अरु तीनि एक, इक पटल वताए।
इक सौ वारै सरव, वीस थानकके गाए॥
सव सात नरक आठौं जुगल- त्रय ग्रीवक द्वय उत्तरे
उनचास नरक त्रेसठ सुरग; धन दोनौं समकित-
भरे॥ १६॥

अर्थ—सातवे नरकमे १, छट्ठेमे ३. पाचवेमे ५. चौथेमे ७. तीसरेमे ९. दूसरेमे ११ और पहिलेमे १३ पटल है। इस तरह सातो नरकोमे ४९ पटल है। स्वर्गोके पहिले जुगलमे अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गमे ३१. दूसरे

१ पौने सोलह धनुषके १५०० वा भाग देनेसे १ [illegible] धनुष होते है। यह [illegible] प्रमाणागुलसे है और सिद्धोकी अवगाहना उत्सेधागुलसे है। इसके [illegible] ५०० का गुणा करनेसे [illegible] धनुष होते है। यही सिद्धोकी [illegible] अवगाहना है। २ जिन विमानोका ऊपरी भाग एक समतलमे पाया जाता है, वे [illegible] एक पटलके कहलाते है। प्रत्येक पटलके मध्यके विमानको इन्द्रक [illegible] [illegible] जो पक्तिरूप विमान है, उन्हे श्रेणीवद्ध और जो [illegible] [illegible] है उन्हे प्रकीर्णक विमान कहते है।

नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये छह संहनन है। इन छहों संहननवाले जीव मरकर यदि नरकोंको जावे, तो पहिले नरकसे तीसरे नरकतक जाते हैं। असं-प्राप्तासृपाटिकको छोड़कर शेष पांच संहननवाले चौथे और पांचवे नरकतक जाते है। असंप्राप्तासृपाटिकवाले तीसरे नरकसे आगे नहीं जाते है। कीलक और असंप्रा-प्तासृपाटिकको छोड़कर चार संहननवाले छठे नरकतक जाते है। कीलकवाले पांचवेसे आगे नहीं जाते हैं। एक वज्रवृषभ नाराचवाले सातवें नरकतक जाते हैं। शेष पांचवाले सातवें नरकको नही जाते है। इसी प्रकार यदि इन छहों संहननोवाले जीव मरकर स्वर्गको जावे, तो आठवे स्वर्गतक जाते है। असंप्राप्तासृपाटिकको छोड़कर शेष पांच बारहवे स्वर्गतक जाते है। असं० वाले आठवेसे ऊपर नही जा सकते है। असं० और कीलकको छोड़कर बाकी चार सोलहवे स्वर्गतक जाते है। कीलकवाले बारहवेसे ऊपर नहीं जा सकते है। नाराच वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच इन तीन संहननवाले नौग्रैवेयिक-तक जाते हैं। अर्धनाराचवाले सोलहवेसे ऊपर नही

१ हड्डियोंके एक प्रकारके बंधानको संहनन कहते है। जिसकी हड्डिया, वेष्टन, और कीलिया वज्रकी हो, वह वज्रवृषभनाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डिया और कीलिया वज्रकी हो, वेष्टन वज्रके न हो, वह वज्रनाराचसंहननवाला है। जिसकी हड्डिया वेष्टन और कीलीसहित हो, वह नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियोकी संधिया आधी कीलित हो, वह अर्ध नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डिया परस्पर कीलित हो, वह कीलित संहननवाला है और जिसकी हड्डिया जुदी २ हो, नसोंसे बँधी हो—परस्पर कीलित न हो, वह असंप्राप्तासृपा-टिका सहननवाला है।

ननके धारण करनेवाले जीव होते है । पांचवे कालमे अर्ध नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक इन तीन संहननोंवाले होते हैं । कर्मभूमिकी स्त्रियोंके भी ये ही तीन संहनन होते है । छट्ठे कालमे केवल एक असंप्राप्तासृपाटिक संहनन ही होता है, अन्य पांच नहीं । विकल चतुष्क जीवोके अर्थात् दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोके भी यही असंप्राप्तासृपाटिक संहनन होता है । एकइंद्री जीवोंके कोई भी संहनन नहीं होता, अर्थात् उनके हड्डियां होती ही नहीं हैं । ये छहों संहनन सातवे गुणस्थान तक पाये जाते है । वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन ग्यारहवे गुणस्थान तक पाये जाते है । वज्रवृषभनाराच यह एक संहननवाला ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है और यह तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है । इससे यह ध्वनित होता है कि, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये तीन संहनन सातवे गुणस्थानसे ऊपर नहीं पाये जाते, वज्रनाराच और नाराच ग्यारहवे गुणस्थानसे ऊपर नही पाये जाते और पहले संहननको छोड़कर अन्य पांच संहननोंवाला क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता । ऐसा जिनवाणीमे कहा है । यह जिनवाणी धन्य है ।

चौवीसो तीर्थकरोके वीचका अन्तराल समय ।

सवैया इकतीसा ।

पचास तीस दस नौ किरोर लाख नव्वै नौ,
सहसकोर नौसै कोर नव्वै नौ कोर है ।

ननके धारण करनेवाले जीव होते है । पांचवे कालमे अर्ध नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक इन तीन संहननोंवाले होते हैं । कर्मभूमिकी स्त्रियोंके भी ये ही तीन संहनन होते है । छट्ठे कालमे केवल एक असंप्राप्तासृपाटिक संहनन ही होता है, अन्य पांच नहीं । विकल चतुष्क जीवोंके अर्थात् दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोंके भी यही असंप्राप्तासृपाटिक संहनन होता है । एकइंद्री जीवोंके कोई भी संहनन नहीं होता, अर्थात् उनके हड्डियां होती ही नही है । ये छहों संहनन सातवे गुणस्थान तक पाये जाते हैं । वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन ग्यारहवे गुणस्थान तक पाये जाते है । वज्रवृषभनाराच यह एक संहननवाला ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है और यह तेरहवे गुणस्थान तक पाया जाता है । इससे यह ध्वनित होता है कि, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये तीन संहनन सातवे गुणस्थानसे ऊपर नहीं पाये जाते. वज्रनाराच और नाराच ग्यारहवे गुणस्थानसे ऊपर नही पाये जाते और पहले संहननको छोड़कर अन्य पांच संहननोंवाला क्षपकश्रेणी नही चढ़ सकता । ऐसा जिनवाणीमें कहा है । यह जिनवाणी धन्य है ।

चौवीसो तीर्थकरोके बीचका अन्तराल समय ।

सवैया इकतीसा ।

पचास तीस दस नौ किरोर लाख नब्बै नौ,
सहसकोर नौसे कोर नब्बै नौ कोर है ।

वासुपूज्य का जन्म. उनके निर्वाणके तीस सागर पीछे विमलनाथ का जन्म. उनके मोक्ष जानेके नौ सागर पीछे अनन्तनाथका जन्म. उनके मोक्षके चार सागर पीछे धर्मनाथका जन्म. उनके निर्वाणके पौनपल्य घाटि तीन सागर पीछे शान्तिनाथका जन्म. उनके मुक्त होनेके अर्ध पल्य वर्ष पीछे कुंथुनाथका जन्म, उनके मोक्षके हजार कोटि वर्ष घाटि पावपल्य पीछे अरनाथका जन्म, उनके मोक्षके हजार कोटि वर्ष पीछे मल्लिनाथका जन्म. उनके मुक्त होनेके चौवन लाख वर्ष पीछे मुनि-सुव्रतका जन्म, उनके निर्वाणके छह लाख वर्ष पीछे नमिनाथका जन्म, उनके मोक्ष जानेके पांच लाख वर्ष पीछे नेमिनाथका जन्म, उनके मोक्ष जानेके पौने चौरासी हजार वर्ष पीछे पार्श्वनाथका जन्म और उनके निर्वाणके पाव हजार अर्थात् ढाई सौ वर्ष पीछे महावीर भगवानका जन्म हुआ। (जिस समय महावीर भगवानका मोक्ष हुआ, उस समय चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महीना वाकी थे।) तीर्थंकरोंके इन अन्तराय समयोंका शाम सवेरे स्मरण करना चाहिये।

कर्मोंकी १४८ प्रकृतिया कौन २ गुणस्थानोमे क्षय होती है?

छप्पय।

सात प्रकृतिकौ घात, ठीक सातम गुणथानै।
तीनि आव नहिं होय, नवम छत्तीसौं भानै॥
दसमैं लोभ विदार, बारैहं सोल मिटावै।
चौदहमैंके अंत, वहत्तर तेर खिपावै॥

तव पहले समयमे ७२ और दूसरे समयमें १३ प्रकृति-योंकों खिपाता है। इस तरह सव मिलाकर १४८ कर्मोंके जालको तोड़कर जीव मुक्त हो जाता है और वहां अनन्त सुखोंको भोगता है। हे प्रभो, मै आपके पैरोंमें पड़ता हूं, आप मुझे अपने समीप बुला लेवे अर्थात् अपने समान मुझे भी कर्मोंसे रहित कर देवे।

मानुषोत्तर पर्वतका परिमाण।

कवित (३१ मात्रा)।

मनुषोत्तर पर्वत चौराई, भूपर एक सहस वाईस।
मध्य सात सौ तेइस जोजन, ऊपर चार सतक चौईस
सतरहसौ इकईस उंचाई; जड़ चारसौ पाव अरु तीस।
रिजु विमान किहि भाँति मिल्यौ है, जोजन लाख
कह्यौ जगदीस ॥ २१ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वत जो कि अढ़ाई द्वीप अर्थात् मनुष्य क्षेत्रके वाहिर है और जिसके पहले पहले मनुष्योंका निवास है, उसका विस्तार इस कवित्तमे वतलाया है। इस पर्वतकी चौड़ाई पृथ्वीपर १०२२ योजन है। ऊपरकी चौड़ाई क्रमसे कम होती गई है। अर्थात् उसकी चौडाई मध्यमे ७२३ योजन है और ऊपर ४२४ योजन है। ऊंचाई इस पर्वतकी १७२१ योजन है और जड़ इसकी जो कि चित्रापृथ्वीमें है ४३०¼ योजनकी है। वहुतसे लोग समझते है कि इस पर्वतने स्वर्गोंका ऋजु-

विमान मिला होगा, इसलिये इसके उसपार लोग नहीं जा सकते होंगे। परन्तु यह ठीक नहीं है। यह कैसे मिल सकता है? क्योंकि ऋजुविमान तो एक लाख योजन ऊंचा है और यह केवल १७२१ योजन ऊंचा है।

देवदेवीसंभोग।

दोय सुरगमैं कायभोग है, दोय सुरगमैं फरस निहार
चार सुरगमैं रूप निहारे, चार सुरगमैं सबद विचार॥
चार सुरगमैं मनकौ विकलप,
आगैं सहज सील निरधार।
अहमिंदर सब महा सुखी हैं,
वंदौं सिद्ध सुखी अविकार॥ २२॥

अर्थ—पहिले दो स्वर्गोंमें अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गमें कायभोग है। अर्थात् इन स्वर्गोंके देवोंको जब काम भोगकी इच्छा होती है, तब वे स्त्री पुरुषोंके समान ही संभोग करते हैं। आगे सानत्कुमार और माहेन्द्र इन दो स्वर्गोंमें देव देवियोंके परस्पर स्पर्श मात्रसे संभोगकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। इनसे ऊपर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ट इन चार स्वर्गोंमें परस्पर रूप देखने मात्रसे कामवासनाकी तृप्ति हो जाती है। आगेके शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार इन चार स्वर्गोंमें कामरूप शब्दोंके श्रवणमात्रसे इच्छा मिट जाती है और आगेके आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंमें

मनमें कामचिन्तवन करनेमात्रसे इच्छा की निवृत्ति हो जाती है। इन सोलह स्वर्गोंके आगे ग्रैवेयिक अनुदिशि आदिमें देवियां नहीं है, इसलिये वहांके देव सहज शीलवंत वा ब्रह्मचारी हैं। और जो अहमिंद्र हैं, उनमे पारिषदादि दशभेद छोटे वड़पनके नहीं है। वे वड़े सुखी हैं। उनसे अधिक सुखी सिद्ध भगवान है. जो कि विकाररहित है। उनकी मैं वन्दना करता हूं।

१६९ प्रधान पुरुषोकी गणना।

छप्पय।

चौवीसौं जिनराय-पाय वंदौं सुखदायक।
कामदेव चौवीस, ईस सुमरौं सिवनायक॥
भरत आदि चक्रीस, दुदस वहु सुरनरस्वामी।
नारद पदम मुरारि, और प्रतिहरि जगनामी॥
जिनमात तात कुलकर पुरुष, संकर उत्तम जिय धरौं।
कछु तदभव कछु भव धरत, मुकतिरूप वंदन करौं२३

अर्थ—सुखके देनेवाले २४ तीर्थकरोंके चरणोंकी वन्दना करता हूं। २४ कामदेवोका स्मरण करता हूं. जो उसी भवमे मोक्षके नायक अर्थात् सिद्ध हो गये है। भरतादि १२ चक्रवर्ती जो अगणित मनुष्य और देवोंके स्वामी थे, तथा ९ नारद, ९ वलभद्र. ९ नारायण. ९ प्रति-नारायण, २४ तीर्थकरोंकी माताएँ, २४ पिता. १४ कुल-

जड़रूप कर्मोंके हैं। अपने निजरूपको इनसे जुदा श्रद्धान करना चाहिये। (१४८ मेसे १०१ प्रकृति तो चार अघातिया कर्मोंकी हैं और ४७ चार घातिया कर्मोंकी हैं।)

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, पुद्गलविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतिया।

सवैया इकतीसा।

वरनादिक वीस संस्थान संहनन वारै,
बंधन संघात देह अंगोपांग ठौरै हैं।
अगुरु लघु आतप उपघात परघात,
निरमान परतेक साधारन सारै हैं॥
अथिर उदोत थिर सुभ असुभ वासठ,
पुग्गलविपाकी भौविपाकी आव चारै हैं।
क्षेत्रकी विपाकी चार आनुपूर्वी अठत्तर,
वाकी जीवकी विपाकी धरैं अघ टौरै हैं २५

अर्थ—वर्ण ५, गंध २, स्पर्श ८ और रस ५ इसतरह वर्णादिक २० प्रकृतियां; संस्थान ६ और संहनन ६ इस तरह दोनों १२; बंधन ५, संघात ५, शरीर ५, और अंगोपांग ३, इस तरह चारो १८: अगुरुलघु १, आतप १, उपघात १, परघात १, निर्माण १, प्रत्येक १, साधारण १, अथिर १, उद्योत १, स्थिर १, शुभ १, और अशुभ १, इस तरह १२: कुल मिलाकर ६२ प्रकृतियां पुद्गलविपाकी

सर्वघाती और देशघाती प्रकृतिया ।

केवल दरस ग्यान आवरणी ताकी दोय,
मिथ्यात समै मिथ्यात निद्रा पांच भानिए।
तीनौं चौकरीकी बारै सर्वघाती इकईस,
संज्वलन चार नव नोकषाय मानिये ॥
ग्यानावरणीकी चार दर्शनावरणी तीन.
अंतराय पांच सम्यक मिथ्यात ठानिये ।
देसघातीकी छबीस बाकी एकसौ अघाती.
तीनौं घातीकर्म घात आप सुद्ध जानिये

अर्थ—केवलज्ञानावरणी. केवलदर्शनावरणी मि-
यात्व. सम्यक्मिथ्यात्व (मिश्रमिथ्यात्व) निद्रा. निद्रा-
निद्रा. प्रचला. प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिनिद्रा ये पांच
निद्रा. अनन्तानुबन्धी क्रोध मान. माया. लोभ. प्रत्या-
ख्यान क्रोध. मान. माया. लोभ. अप्रत्याख्यान क्रोध.
मान. माया लोभ ये तीन चौकडीके बारह कषाय इन
बारह इकीस सर्वघाती प्रकृतिया हैं । ये आत्मगुणको
सर्वथा घातनेवाली हैं. इस लिये सर्वघाती कहलाती हैं ।
और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ ये चार सञ्ज्वलन
कषाय· हास्य रति. अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद.
पुरुषवेद. नपुंसकवेद ये नौ नोकषाय मतिज्ञानावरणी.
श्रुतज्ञानावरणी. अवधिज्ञानावरणी. मनःपर्ययज्ञानावरणी.
ये चार ज्ञानावरणीः चक्षुदर्शनावरणी. अचक्षुदर्शनावरणी.

सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियां।

केवल दरस ग्यान आवरणी ताकी दोय
मिथ्यात समै मिथ्यात निद्रा पांच मानिए।
तीनों चौकरीकी बार सर्वघाती इकईस
संज्वलन चार नव नोकषाय मानिये ॥
ग्यानावरणीकी चार दर्शनावरणी तीन.
अंतराय पांच समयक मिथ्यात मानिये।
देसघातीकी छबीस बाकी एकसौ अघाती
तीनों घातीकर्म घात आप सुद्ध जानिये

चारमें गर्भित हो जाते है, इसलिये १६ तो ये कम हुए। और ५ शरीर, ५ वंधन ५ संघात ये १५ प्रकृतियां अविनाभावी हैं। अर्थात् जहां एक शरीरका वंध होता है, वहां उस शरीरसम्वंधी वंधन और संघातका भी वंध अवश्य होता है। इसलिये ५ शरीरप्रकृतियोंमें अविनाभावसम्वंधसे ५ वंधन और ५ संघात भी गर्भित हो जाते हैं। दर्शनमोहकी ३ प्रकृतियां हैं, उनमेंसे १ मिथ्यात्वप्रकृति वंधयोग्य है, वाकी २ वंधयोग्य नहीं है। अर्थात् सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिका वंध नहीं होता है, किन्तु उपशमसम्यक्तीके मिथ्यात्वके तीन खंड हो जाते है। इस तरह सोलै दश दोय अर्थात् २८ हुई। इनको छोड़कर वाकी १२० प्रकृतियां वंधयोग्य हैं। और उदयमे दर्शनमोहनीकी तीनों प्रकृति आती है, इसलिये वंधकी अपेक्षा उदयमे २ प्रकृतियां ज्यादा हुई। अर्थात् १२२ प्रकृतियां उदयमे आती हैं। और इतनीहीकी अर्थात् १२२ हीकी उदीरणा (स्थिति पूरी किये विना ही कर्मोंका फल देकर झड़ना) होती है। नानाजीवोंकी अपेक्षा सत्ता १४८ ही प्रकृतियोंकी पाई जाती है। यह सामान्य सत्ता है। विशेष सत्ता किसी एक जीवकी अपेक्षासे होती है। सो किसी एक जीवके मिथ्यात्वगुणस्थानमे अधिकसे अधिक १४६ प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। किसीके १२७ की भी वतलाई है। हमारा आत्मा इन पांचों ही त्रिभंगियोंसे जुदा निजसत्तामे विराजता है।

पाप प्रकृतियोंके नाम।

सवैया इकतीसा।

घाति सैंतालीस दुक्ख नीच नरकायु पंच,
संस्थान संहनन वर्न रस मानिए।
नर पसु गति आनुपूरवी फरस आठ,
गंध दोय इंद्री चार कुरीचाल ठानिए॥
अथिर अपर्यापत सूच्छम औ साधारण,
उपघात थावर असुभ परवांनिए।
दुर्भग दुस्वर औ अनादेय अजस रूप,
पाप प्रकृति सौ भेद त्यागि धर्म जानिए॥१९॥

अर्थ—घाति प्रकृति ४७ दुःख अर्थात् असाता वेदनीय १. नीच गोत्र १. नरकायु १. संस्थान (समचतुरस्रको छोड़कर) अन्तके ५ संहनन (वज्रवृषभनाराचको छोड़कर) अंतके ५ वर्ण ५ रस ५ नरकगति १ पशुगति १. नरकगत्यानुपूर्वी १ पशुगत्यानुपूर्वी १ स्पर्श ८. गंध २ इन्द्री (पंचेन्द्रीको छोड़कर) ४ अप्रशस्तविहायोगति १ अस्थिर १ अपर्याप्त १ सूक्ष्म १ साधारण १. उपघात १ स्थावर १ अशुभ १ दुर्भग १. दुःस्वर १ अनादेय १ अयश कीर्ति १ ये सब मिलकर १०० पाप प्रकृतियां हैं। इनको त्याग कर धर्मका स्वरूप जानना चाहिये।

पुण्य प्रकृतियोंके नाम ।

सुर नर पसु आव साता ऊंच भली चाल,
सुर नर आनुपूर्वि निरमान स्वास है ।
वंधन संघात देह वर्ण रस पंच त्रस,
तीन अंग सुभ दोय गंध आठ फास है ॥
अगुरुलघु पंचेंद्री संस्थान संहनन,
वादर प्रतेक थिर पर्यापत जस है ।
आतप उद्योत परघात सुस्वर सुभग,
आदेय तीर्थंकरकौं वंदौं अघ नास है ३०

अर्थ—देवआयु १, मनुष्यआयु १, तिर्यंचआयु १, सातावेदनी १, ऊंच गोत्र १, प्रशस्त विहायोगति १, देवगति १, मनुष्यगति १, देवगत्यानुपूर्वी १, मनुष्य-गत्यानुवर्ती १, निर्माण १, श्वासोच्छ्वास १, वंधन ५, संघात ५, शरीर (औदारिकादि) ५, वर्ण ५, रस ५, त्रस १, औदारिकअंगोपांग १, वैक्रियक अंगोपांग १, आहारक-अंगोपांग १, शुभ १, गंध २, स्पर्श ८, अगुरुलघु १, पंचेंद्री १, समचतुरस्रसंस्थान १, वज्रऋपभनाराच-संहनन १, वादर १, प्रत्येक १, स्थिर १, पर्याप्त १, यश १, आतप १, उद्योत १, परघात १, सुस्वर १, सुभग १, आदेय १, और तीर्थंकर १ ये सव ६८ पुण्य-प्रकृतियां हैं । समस्तपुण्यप्रकृतियोंमें तीर्थंकरप्रकृति

श्रेष्ठ है—पापोंकी क्षय करनेवाली है. इसलिये मैं इनकी वन्दना करता हूं।

जिनमतकी श्रद्धा।

छप्पय।

तिहूं काल षट् द्रव्य, पदारथ नव गुन भाखै।
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, षटकायिक राखै॥
आठ कर्म गुन आठ, भेद लेश्या षट् जानै।
पंच पंच व्रत समिति, चरित गति ग्यान बखानै।
सरधै प्रतीत रुचि मन धरै,
मुकतिमहल सम्मकित यही।
पद नमौ जोर कर सीस धर,
धन सर्वग हर जिन कही॥ १ ॥

अर्थ—तीन काल—भूत वर्तमान भविष्यत् [illegible] —जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश [illegible] [illegible]

अर्थ—पृथ्वीकायके २२ लाख, जलकायके ७ लाख, तेजकायके ३ लाख. वायुकायके ७ लाख, तरुकाय अर्थात् वनस्पतिकायके ८ लाख, दोइंद्रियके ७ लाख, ते इंद्रियके ८ लाख, चौ इंद्रियके ९ लाख. पक्षियोंके १२ लाख, जलचारी जीवोंके १२॥ लाख, चौपायोंके १० लाख, सरीसृप जीवोंके अर्थात् जमीनपर घिसट कर चलनेवाले सांप आदि जीवोंके ९ लाख, नारकियोंके २५ लाख, मनुष्योंके १४ लाख, और देवोंके २६ लाख कुलकोड़ हैं। सबका जोड़ दो कोड़ाकोड़ीमेसे आधा लाख कम अर्थात् १९९॥ लाख करोड़ होता है। इन सबको जानकर इनपर दयाभाव रखना चाहिये।

स्पर्श रस गंध वर्णादिके भेदसे जीवोंके शरीरके जो भेद होते हैं. उन्हे कुल कहते है। सम्पूर्ण जीवोंके १९९॥ लाख करोड़ भेद हो सकते है। योनिस्थानोंकी अपेक्षा कुल अधिक होते है, इसका कारण यह है कि, एक योनिसे उत्पन्न हुए जीवोके भी वर्णादिके भेदसे अनेक भेद हो सकते है।

अंकगणनाके ग्यारह भेद।

छप्पय।

ग्यार अंक पद एक, अंक दस सब पद जानी।
पूरब चौदे अंक, वीस अच्छर जिनवानी॥
उनतिस अंक मनुष्य,
पल्य पैंतालिस अच्छर।

सरसों कुंड छियाल,
डेढ़सौ थिति अच्छर वर ॥
इकतीस अंक पल कलपके,
जंबु फलावटि दस वरन
सब वातवलय ग्यारै वरन,
धन्य जैन संसै हरन ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनवाणीके एक पदके अक्षर ग्यारह अंक प्रमाण अर्थात् १६३४८३०७८८८ हैं। और उन सम्पूर्ण पदोंकी संख्या दश अंक प्रमाण अर्थात् ११२८३५८००५ है। चौदह पूर्वोंके अक्षरोंकी संख्या चौदह अंक प्रमाण अर्थात् ७०५६०००००००००० है। सम्पूर्ण द्वादशांग-वाणीके अक्षरोंकी संख्या वीस अंक प्रमाण–१८४४६७४-४०७३७०९५५१६१५ है। पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या २९ अक्षर प्रमाण–७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५-०३३६ है। पल्यकी[1] गिनती ४५ अक्षर प्रमाण—४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००० ००००००००००० है। सरसों कुंडके सरसोंकी गिनती ४६ अंक प्रमाण—१९९७११२९३८४५१३१६३६३६३ ६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ है। स्थिति के अंकोंका प्रमाण १५० है। एक कल्पकालके पल्य २१

१ इस अलौकिक गणितका जिसे विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो, उसे जैन-सिद्धान्तदर्पणके पृष्ठ ६८ मे देखना चाहिये। यहा विस्तारके भयसे नहीं लिखा है।

अंक प्रमाण हैं। जम्बूद्वीपका घनफल दश अंक प्रमाण अर्थात् ७९०५६९४१५० योजन है। सब वातवलयोंका घनफल ११ अंक प्रमाण अर्थात् १०२४१९८३४८७ है। संशयके हरण करनेवाले जैनधर्मको धन्य है।

तेरहवें गुणस्थानमें सात त्रिभंगी।

छप्पय।

सात आसरव द्वार, बंध इक साता कहिए।
चौदै भाव प्रमाण, पचासी सत्ता लहिए॥
अस्सी चउरासीय, इक्यासी और पिच्यासी।
यह सत्ता चौ भेद, विसेस जिनेसुर भासी॥
इक कम चालीस उदीरना, उदय वियालिस मानिए
यह तेरहवें गुणथानमैं, सात त्रिभंगी जानिए २९

अर्थ—तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थानमे सात त्रिभंगी होती है, सो इस प्रकार—सत्यमन अनुभयमन, सत्यवचन अनुभयवचन औदारिककाय औदारिक मिश्र और कार्माण ये सात आस्रवद्वार हैं और बंध एक साता वेदनीयका है और भाव इस गुणस्थानमे १४ (ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्य सम्यक्त्व चारित्र मनुष्यगति असिद्धत्व भव्यत्व जीवत्व और लेश्या) होते हैं। ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। पर सत्ता जिनेश्वर भगवानने नाना जीवोंकी अपेक्षा चार प्रकारकी कही है। अर्थात् किसी जीवके ८० प्र

जीव करम मिलि बंध, देय रस तास उदै भनि ।
उदीरना उपाय, रहैं जब लौं सत्ता गनि ॥
उतकरसन थिति बढ़ैं, घटैं अपकरसन कहियत ।
संकरमन पररूप, उदीरन बिन उपसम मत ॥
संक्रमण उदीरन बिन निधत,

घट बढ़ उदरन संक्रमन ।
चहु बिना निकांचित बंध दस,
भिन्न आपपद जानिमन ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीव और कर्मोंके मिलनेको बंध कहते हैं। अपनी स्थितिको पूरी करके कर्मोंके फल देनेको उदय कहते हैं। तप आदि निमित्तोंसे स्थिति पूरी किये बिना ही कर्मोंके फल देनेको उदीरणा कहते हैं। जबतक कर्म आत्माके साथ सम्बन्ध रखते हैं, तबतक उनकी सत्ता कहला

ती है। जिस कर्मकी जितनी स्थिति बांधी हो, उतनीमें अधिक हो जानेको उत्कर्षण कहते हैं और घटजानेको अपकर्षण कहते हैं। किसी कर्मके सजातीय एक भेदसे दूसरे भेदरूप हो जानेको संक्रमण कहते हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रगट न होनेको उपशम कहते हैं अर्थात् जब कर्मोंकी उदीरणा नहीं होती है और उदय भी नहीं होता है, तब उपशम होता है। संक्रमण और उदीरण न होनेको अर्थात् जो कर्मप्रकृति बांधी हो वे न दूसरे रूप हो और न उनकी उदीरणा हो, उसे निधत्त कहते हैं। और जिसमें स्थितिका घटना बढ़ना पररूप होना और उदीर्ण होना ये चारों बातें न हों उसे निकांचित कहते हैं। इस तरह बंधके दश प्रकार हैं। हे मन, तुझे आत्माका पद इनसे सर्वथा भिन्न समझना चाहिये।

तीन लोकके अकृत्रिम चैत्यालयोंकी संख्या।

सवैया तेईसा ([illegible])

सात किरोर बहत्तर लाख,
पतालविषे जिनमंदिर जानें।
मध्यहि लोकमें चार सौ ठावन
व्यंतर जोतिषके अधिकानें॥
लाख चौरासि हजार सतानवे,
तेइस ऊरध लोक बखानें।

एकेकमैं प्रतिमा सत आठ,
नमैं तिहुजोग त्रिकाल सयानैं ॥३६॥

अर्थ—पातालमें अर्थात् चित्रा पृथिवीके नीचे भवनवासी देवोंके भवनोंमें ७७२००००० अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, मध्यलोकमें अर्थात् जम्बूद्वीपसे तेरहवें रुचक कुंडलगिरि नामके तेरहवें द्वीपतकके क्षेत्रमें ४५८ जैन मंदिर है। व्यन्तरदेवोंके और ज्योतिपीदेवोंके भवनोंमें असंख्यात चैत्यालय हैं। और ऊर्ध्वलोकमें अर्थात् सौधर्म स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धितक ८४९७०२३ चैत्यालय हैं। इन सब मंदिरों या चैत्यालयोंमें एक एकमें एक एक सौ आठ प्रतिमाएं हैं। उन्हें चतुर पुरुष मन वचन कायसे तीनों समय नमस्कार करते हैं।

तीन कम नव कोटि मुनियोंकी संख्या।

पांच किरोर तिरानवै लाख,
हजार अठानवै दोसै छ जानै।
जीव छठे गुणमैं अध सातमें,
ग्यारसै छयानवै चार ठिकानै॥
आठ नवै दस बारहैं चौदहैं;
सौ उनतीस नवै परमानै।
तेरमैं आठ हि लाख हजार,
अठानवै पांचसै दोय बखानै॥ ३७॥

अर्थ—अढ़ाई द्वीपमे एक कालमे अधिकसे अधिक इतने मुनि हो सकते है—छठे गुणस्थानमे ५९३९८२०६, सातवे गुणस्थानमे उससे आधे अर्थात् २९६९९१०३, आगे उपशमश्रेणीके आठवे, नवें, दशवे और ग्यारहवे इन चार स्थानोंमे सव मिलाकर ११९६, अर्थात् प्रत्येक मे २९९. और क्षपकश्रेणीके आठवे, नवे, दशवे, वारहवे तथा चौदहवे गुणस्थानोंमे मिलाकर २९९० अर्थात् प्रत्येकमे ५९८, और तेरहवे गुणस्थानमे ८९८५०२। सव-का जोड़ ८९९९९९९७ होता है। इससे अधिक मुनि एक कालमे नहीं हो सकते।

अढाईद्वीपका ज्योतिषमडल।

कवित्त (३१ मात्रा)।

एक चन्द इक सूर्य अठासी,
ग्रह अट्ठाइस, नखत वखान।
छ्यासठ सहस पचत्तर नवसै,
कोड़ाकोड़ी तारे जान॥
इकसौ वत्तिस चंद इही विध,
ढाई द्वीपमध्य परवान,
सव चैत्यालय प्रतिमामंडित,
वंदन करौं जोरि जुगपान॥ ३८॥

---

१ छठे गुणस्थानसे पहले मुनि नहीं होते।

अर्थ—ज्योतिषी देव पांच प्रकारके हैं—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे। इनमें चन्द्र इन्द्र होता है और सूर्य प्रतीन्द्र होता है। एक चन्द्रमाका परिवार इस प्रकार है—१ सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण। सो ढाई द्वीपमें इसी प्रकारके परिवारवाले १३२ चन्द्रमा हैं। इन सब ज्योतिषियोंके विमान जिन चैत्यालयों और जिन प्रतिमाओं सहित हैं। इसलिये मैं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूं।

आयुकर्मके बंधके नव भेद।

आठ अंस पैंसठ सौ इकसठ,
इकइस सौ सत्तासी जान।
सात सतक उनतीस दोय सौ;
तेतालिस इक्यासी मान॥
सत्ताइस और नौ तीनों;
एक आठवाँ भेद वखान।
नौमीं अंतकालमें बाँधै,
अगली गतिकी आउ निदान॥ ३९॥

अर्थ—जीव अपनी अगली आयुका बंध कब करता है, इसका खुलासा इस कवित्तमें किया है,—किसी जीवकी आयुमें यदि हम ६५६१ अंशोंकी कल्पना करें, तो इसके तीसरे हिस्सेमें अर्थात् जब २१८७ अंश आयुके शेष

रह जावेगे, तब वह आगामी भवकी आयुको बाँधेगा। यदि उस समय नही बांध सकेगा, तो २१८७ के तिहाई मे अर्थात् ७२९ अंश शेष रहेगे, तब बाँधेगा । यदि उस समय भी न बांध सका, तो २४३ अंश शेष रहनेपर बांधेगा । और तब भी न बांध सका तो त्रिभागके ८१, २७, ९, ३, और १ आदि स्थानोमे बांधेगा । इस तरह आठ बार जो त्रिभाग हुए है, उनमेसे किसी न किसीमे आयुका बंध कर ही लेगा और यदि आठों त्रिभाग चूक जावेगा, तो अपनी आयुके अन्त समयमे तो अवश्य ही अगली आयु बांध लेगा । विना अगली आयुका बंध किये कोई भी जीव वर्तमान आयुको नही छोड सकता है । और आयु कर्मका बंध त्रिभागमे ही होता है ।

सत्तावन जीवसमास ।

छप्पय ।

भूजल पावक वायु, नित्य इतर साधारन ।
सूच्छम वादर करत, होत द्वादस उच्चारन ॥
सुप्रतिष्टित अप्रतिष्ट मिलत चौदह परवानो ।
परज अपर्ज अलब्ध, गुनत व्यालीस वखानो ॥
गुन वे ते चौ इंद्री त्रिविध, सर्व एक पंचास भन ।
मनरहित सहित तिहुभेदमों, सत्तावन धर दया
मन ॥ ८० ॥

दो दो नारकी सुदेव नौ विध मनुष्य वेव,
भोगभू कुभोगभू मलेच्छभू बताए हैं।
दोय दोय दोय तीनि आरजमैं राजत हैं;
अठानवै दया करैं साधु ते कहाए हैं॥२१॥

अर्थ—स्थावर और विकलत्रय (दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय) जीवोंके ५१ भेद तो ४० वे पद्यमे कह चुके हैं. उनमे पंचेन्द्रिय जीवोके ४७ भेद और मिलानेसे ९८ भेद हो जाते हैं। सो इस प्रकारसे.—गर्भज जीवोके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो. सम्मूर्छन पंचेन्द्रियोंके पर्याप्त अपर्याप्त. और अलब्धपर्याप्त ये तीन इस तरह पांच फिर दोनोंके सैनी और असैनी भेद करनेसे हुए दश। ये दश भेद थलचारी पंचेन्द्रियोके हुए। इसी प्रकारके दश दश भेद जलचारी और नभचारी पंचेन्द्रियोमे भी होते हैं। सब तीस भेद कर्मभूमिके पंचेन्द्रिय जीवोके हुए। भोगभूमिमे जलचर और सम्मूर्च्छन जीव नही होते हैं। केवल गर्भज थलचारी और नभचारी होते हैं और इन दोनोके पर्याप्त अपर्याप्त दो दो भेद होते हैं। इसतरह भोगभूमिके जीवोके चार भेद हुए। देव और नारकियोके भी पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे चार भेद होते हैं। मनुष्योके नव भेद होते हैं—भोगभूमि कुभोगभूमि और म्लेच्छखंडके मनुष्योके पर्याप्त अपर्याप्तके प्रकारसे ६ भेद

और आर्यखंडके मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्त अलब्धपर्याप्त ये तीन भेद। सब मिलानेसे ९८ भेद हुए—

स्थावर जीवोंके......४२ भोगभूमिके थल नभ चारियोंके ४
विकलत्रयके........९ देव नारकीयोंके......४ कर्मभूमिके जलचारियोंके १० भोगकुभोग म्लेच्छमनुष्योंके ६
,, थलचारियोंके १० आर्यखंडके मनुष्योंके...३
,, नभचारियोंके १०
—
९८

इन सब जीवोंपर जो दया करते हैं, वे ही साधु पुरुष हैं।

प्रमादोंके भेद।

छप्पय।

विकथारूप पचीस और पनवीस कसायनि।
गुणतैं छस्सै सवा, पांच इंद्री मनसौं गनि॥
पौनैं चार हजार, पांच निद्रासौं गुनिए।
सहस पौन उनईस, नेह अरु मोह सु सुनिए॥
साढ़े सैंतीस हजार सब, भेद प्रमाद प्रमानिए।
छट्ठे गुणथानकलौं कहे, त्याग आप थिर ठानिए ४२

अर्थ—विकथाके[१] २५ भेद हैं। उनसे २५ कषायोंका गुणा करनेसे ६२५ होते हैं। और ६२५ का पांच इन्द्रिय

---

१ विकथाके मूल भेद तो चार ही है, परन्तु उत्तरभेद मूलसहित २५ हैं-राज कथा, भोजन कथा, स्त्री कथा, चोर कथा, धन, वैर, परखंडन, देश, कपट, गुणवध, देवी, निष्ठुर, शून्य, कंदर्प, अनुचित, भंज, मूर्ख, आत्मप्रशंसा, परवाद, ग्लानि, परपीड़ा, कलह, परिग्रह, साधारण, संगीत।

था मन अर्थात् छहसे गुणा करनेसे ३७५० होते हैं। न्हें पांच निद्रासे गुणाकार करनेसे पौने उनईस हजार १८७५० भेद होते हैं। और इन भेदोंको स्नेह और मोह-रूप दोकी संख्यासे गुणाकार करनेसे ३७५०० होते हैं। इस तरह प्रमादके साढ़े सैंतीस हजार भेद होते हैं। ये प्रमाद छट्ठे गुणस्थानतक रहते हैं। इनका त्याग करके अपने आपमें स्थिर होना चाहिये।

ज्योतिषमंडलकी ऊंचाई।

छप्पय।

सात सतक अरु नवै. तासुपर तारे राजैं।
ता ऊपर दस भानु, असीपर चन्द विराजैं॥
च्यारि नखत बुध च्यारि. तीनिपर सुक्र बतायौ।
तीनि गुरू कुज तीनि. तीनिपर सनि ठहरायौ॥
इमि नवसै जोजन भूमितैं. जोतिषचक्र वखानिए।
इकसौ दस जोजन गगनमैं. फैलि रह्यौ परमा-
निए॥ ९३॥

अर्थ—पृथ्वीसे ७९० योजनकी ऊंचाईपर तारोंके विमान हैं। उनसे दश योजनकी ऊंचाईपर सूर्य और उससे ८० योजनकी ऊंचाईपर चन्द्रमा है। चन्द्रमाके ऊपर चार योजनपर नक्षत्र. चार योजनपर बुध तीन योजनपर शुक्र. तीनपर गुरु. तीनपर मंगल. और तीनपर शनिः इस प्रकार क्रमसे एकके ऊपर एक हैं।

गुणस्थानोंका गमनागमन।

(छप्पय)

मिथ्या मारग च्यारि, तीनि चउ पांच सात भनि।
दुतिय एक मिथ्यात, तृतिय चौथा पहला गनि॥
अव्रत मारग पांच, तीनि दो एक सात पन।
पंचम पंच सुसात, चार तिय दोय एक भन॥
छट्टे पट इक पंचम अधिक,
सात आठ नव दस सुनौ॥
तिय अध ऊरध चौथे मरन,
ग्यार चार विन दो मुनौ॥ २२॥

अर्थ—पहले मिथ्यात गुणस्थानसे ऊपर चढ़नेके चार मार्ग हैं। कोई जीव मिथ्यात्वसे तीसरे गुणस्थानमें जाता है, कोई चौथेमें, कोई पांचवेंमें और कोई एकदम सातवेंमें जाता है। दूसरे सासादन गुणस्थानसे एक ही मार्ग है अर्थात् वहांसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही जाता है। तीसरे गुणस्थानसे यदि ऊपर चढ़ता है, तो चौथे गुण-

स्थानमे जाता है और यदि नीचे पड़ता है. तो पहिलेमे आकर पड़ता है। चौथे अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे ऊपर नीचे जानेके पांच मार्ग है। नीचे पड़ता है, तो तीसरे दूसरे वा पहलेमे आता है और यदि ऊपर चढ़ता है, तो पांचवे वा सातवें गुणस्थानमे जाता है। पांचवें गुणस्थानसे भी पांच मार्ग हैं। ऊपर चढ़ेगा, तो सातवेमे जायगा और नीचे पड़ेगा, तो चौथे तीसरे दूसरे या पहलेमे आवेगा। छट्टे गुणस्थानसे छह मार्ग है। पांचवे गुणस्थानसे एक अधिक है अर्थात् ऊपर चढ़ेगा, तो सातवेमे जायगा और नीचे उतरेगा तो, पांचवे चौथे तीसरे दूसरे वा पहलेमे आ जायगा। सातवें आठवें, नववे और दशवें गुणस्थानसे उपशमश्रेणीवालेके तीन मार्ग है। दो अधो ऊर्ध्वके अर्थात् इन गुणस्थानोंसे जीव नीचे पड़ेगा. तो अनुक्रमसे एक एक उतरेगा. अर्थात् छठे, सातवें आठवे और नववेमे आवेगा और ऊपर चढ़ेगा, तो अनुक्रमसे एक एक ऊपर चढ़ेगा. अर्थात् आठवे नववें दशवे और ग्यारहवेमे जावेगा। और तीसरा मार्ग मृत्युके समयका है। ऐसा नियम है कि, इन गुणस्थानोमे यदि जीव मरण करे. तो मृत्युके समय उसका चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान हो जाय। ग्यारहवें गुणस्थानसे वारहवेमे जानेके मार्गको छोड़कर दो मार्ग हैं। अर्थात् इस गुणस्थानवाला जीव वारहवे गुणस्थानमे नही चढ़ सकता। नीचे उतरेगा. तो दशवेमे आवेगा. और मृत्युके समय इसका भी चौथा गुणस्थान हो जायगा।

क्षपक या क्षपकश्रेणीवाला जीव नीचे नहीं पड़ता है। ऊपर चढ़ता है, सो ग्यारहवें गुणस्थानमें नहीं जाता है, दशवेंसे बारहवेंमें पहुंच जाता है। और बारहवें-के अन्त तथा तेरहवेंके प्रारंभमें केवलज्ञान प्राप्त करके चौदहवें गुणस्थानमें जाता है और उसके अन्तमें मुक्त हो जाता है।

चौबीस तीर्थंकरोंके शरीरका वर्ण।

छप्पय।

पहुपदंत प्रभु चंद, चंद सम सेत विराजै।
पारसनाथ सुपास, हरित पन्नामय छाजै॥
वासुपूज्य अरु पदम, रकत माणिकदुति सोहै।
मुनिसुव्रत अरु नेमि, स्याम सुरनरमन मोहै॥
बाकी सोले कंचन वरन, यह विवहार शरीरथुति।
निहचै अरूप चेतन विमल, दरसग्यानचारित्त जुत॥ ४५॥

अर्थ—पुष्पदन्त और चन्द्रप्रभ भगवानके शरीरका वर्ण चन्द्रमाके समान सफेद है, पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथका हरे पन्नेके समान रंग है, वासुपूज्य और पद्म-

---

१ द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ। द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ। शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तहेमप्रभास्ते सज्ज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः॥

प्रभका लालमाणिककी प्रभा जैसा है, मुनिसुव्रत और नेमिनाथका सांवला (नीलमणि सरीखा) है, जिसे देखकर देवों और मनुष्योंका मन मोहित हो जाता है, और शेष १६ तीर्थकरोंका वर्ण सोनेकी कांतिके समान है। तीर्थकरोंके शरीरकी यह स्तुति व्यवहारसे है। निश्चयसे विचार किया जाय तो वे रूपरहित हैं, चैतन्यमय हैं, निर्मल हैं, और क्षायिकदर्शन क्षायिक ज्ञान और क्षायिकचारित्र (स्वरूपाचरण) संयुक्त है।

---

* चरचाशतककी अनेक प्रतियोंमें निम्नलिखित छप्पय और भी पाया जाता है। मालूम नहीं यह मूलका है या प्रक्षिप्त है,—

गोम्मटसारका मंगलाचरण।

छप्पय।

वंदों नेमिजिनेद, नमों चौवीस जिनेसुर।
महावीर वंदामि, वंदि सब सिद्ध महेसुर॥
सुद्ध जीव प्रणमामि, पंचपद प्रणमों सुख अति।
गोमटसार नमामि, नेमिचंद आचारज निति॥
जिन सिद्ध सुद्ध अकलंकवर, गुणमणिभूषण उदयधर।
कहु वीस परूपन भावसों, यह मंगल सब विघनहर॥८८॥

अर्थ—श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरको नमस्कार है, चौबीसों तीर्थंकरोंको नमस्कार है, महावीर भगवानकी वन्दना करता हूं, सम्पूर्ण सिद्ध महेश्वरोंकी वन्दना करता हूं, शुद्ध आत्माको प्रणाम करता हूं, पंचपदोंको अर्थात् पंचपरमेष्ठियोंको प्रणाम करता हूं, गोम्मटसार ग्रन्थको नमन करता हूं और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीको निरन्तर नमस्कार करता हूं। मैं आठों जिनको कि नमस्कार करता हूं कैसे हैं?—जिन हैं, सिद्ध हैं, शुद्ध हैं, कलंकरहित हैं, [illegible] ([illegible]) हैं, और गुणरूपी मणियोंके भूषणोंको उदित करनेवाले हैं। इन सबको नमस्कार करके भावपूर्वक बीस प्ररूपणाओंका वर्णन करता हूं। [illegible] कार्यमें यह मंगल सब विघ्नबाधाओंका नाश करनेवाला होगा।

षट्विधि मंगल।

नमहुं नाम अरहंत, थुनहु जिनबिंब कलिलहर।
परमौदारिक दिव्य बिंब, निर्वाण अवनिपर ॥
कहहु कल्यानककाल, भजहु केवल गुणग्यायक।
यह षटविधि निच्छेप, महा मंगल वरदायक ॥
मंगल दुभेद मल जाय गल, मंगल सुख लहै जीयरा
यह आदि मध्य परजंतलौं, मंगल राखौ हीयरा॥

अर्थ—१ अरहंत भगवानका नाम लेकर नमस्कार करो (नाम निक्षेप), २ पापोंके हरण करनेवाले जिन भगवानके प्रतिबिम्बोंका स्तवन करो (स्थापना निक्षेप), ३ तीर्थंकर भगवानके उत्कृष्ट औदारिक शरीरयुक्त दिव्य बिम्बकी स्तुति करो (द्रव्य निक्षेप), ४ केवलियोंकी निर्वाण भूमियोंको–सम्मेदशिखर आदिको नमस्कार करो (क्षेत्रनिक्षेप), ५ भगवानके गर्भजन्मादि कल्याणक समयोंका कथन करो (कालनिक्षेप) और समस्त पदार्थोंका

इस पद्यके जिन आदि विशेषण गोम्मटसार ग्रन्थके भी हो सकते है। इनमें और सब विशेषणोंका अभिप्राय तो स्पष्ट ही है, एक 'गुणमणिभूषणउदयधर' में कुछ चौज है। 'गुणमणिभूषण' नाम 'चामुडराय' का है। अर्थात् इन चामुडरायके लिये जिसका उदय हुआ है, ऐसा गोम्मटसार ग्रन्थ।

श्रीगोम्मटसार ग्रन्थमे आचार्य नेमिचन्द्रने जो,

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवर णेमिचंदमकलंकं।
गुणरत्नभूसणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥

यह मगलाचरण किया है, उसका उक्त छप्पयमे भावानुवाद है।

ज्ञायक जो केवलगुण (ज्ञान) हैं, उसको भजो (भाव-निक्षेप)। इस तरह यह छह प्रकारका निक्षेप महामंगल-रूप हैं और इच्छित वर देनेवाला है। यहां ' मंगल ' शब्दके अर्थ करते हैं— एक तो ' मं ' अर्थात् दो प्रका-रके अन्तरंग और बहिरंग मल वा पाप जिससे ' गल ' (गालयति) अर्थात् गल जावे—नष्ट हो जावे और दूसरा ' मंग ' अर्थात् सुख ' ल ' (लाति) अर्थात् लाता है-जिससे जीव सुखको प्राप्त करता है। यह मंगल प्रत्येक कार्यके आदि मध्य और अन्त तक हृदयमे रखना चाहिये ?

चौदह मार्गणामे पाच प्ररूपणा गर्भित है।

सवया इकतासा।

जीव समास परजापत मन वच स्वास,
इंद्रीकायमाहिं आव गतिमैं बखानिए।
कायबल जोगमाहिं इंद्री पांच ग्यानमाहिं,
आहार परिग्रह ए लोभमैं प्रवानिए॥
क्रोधमाहिं भय अरु वेदमाहिं मैथुन है,
ग्यान ग्यानमाहिं दर्शदर्शमाहिं जानिए।
पांचौं परूपना ए चौदहमैं गर्भित हैं,
गुनथान मारगना दोय भेद मानिए॥

अर्थ—जीवसमास, पर्याप्ति, मनप्राण, वचनप्राण, और श्वासोच्छ्वासप्राण, ये इन्द्रीमार्गणामें और कायमा-

र्गणामें, आयुप्राण गतिमार्गणामें, काय वल योगमार्ग-
णामें, पांचों इंद्रियां ज्ञानमार्गणामें, आहार संज्ञा और
परिग्रह संज्ञा लोभकषायमार्गणामें, भयसंज्ञा क्रोधमा-
र्गणामें, मैथुनसंज्ञा वेदमार्गणामें, ज्ञानोपयोग ज्ञानमा
र्गणामें और दर्शनोपयोग दर्शनमार्गणामें गर्भित हैं।
इसतरह पांचोंप्ररूपणा चौदह मार्गणाओंमें गर्भित हैं।
सामान्यतासे गुणस्थान और मार्गणा ये दो ही भेद हैं।
अभिप्राय यह कि विशेपतासे तो पांच प्ररूपणा, चौदह
मार्गणा और गुणस्थान इस तरह वीस प्ररूपणा हैं, परन्तु
जव पांच प्ररूपणाओंको मार्गणाओंमें गर्भित कर लेते हैं,
तव केवल दो ही भेद रह जाते हैं।

वारह प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम।

छप्पय।

बंदौं पारसनाथ, नमौं बल रामचंद वर।
कामदेव हनुवंत, प्रगट रावन मानी नर॥
दानेस्वर स्रेयांस, सीलतैं सीता नामी।
तप बाहूबलि नाव, भाव भरतेस्वर स्वामी॥
जग महादेव है रुद्रपद, कृष्ण नाम हरि जानिए।
'द्यानत'कुलकरमें नाभिनृप,भीम वलीभुज मानिए

अर्थ—तीर्थंकरोंमें तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी
और वलभद्रोंमे नववें रामचन्द्र प्रसिद्ध हुए हैं। इन दोनों
महात्माओंको नमस्कार करता हूं। कामदेवोंमें १८ वें

कामदेव हनुमान. मानी पुरुषोंमें आठवां प्रतिनारायण रावण. दानी पुरुषोंमे राजा श्रेयांस जिन्होंने कि आदि भगवानको इक्षुरसका आहार दिया था, शीलवती स्त्रियोंमे सीता, तपस्वियोंमे आदिनाथस्वामीके पुत्र वाहूवलि जिनके कि शरीरपर लताऍ चढ़ गई थी, भाववान् पुरुषोमे भरतचक्रवर्ती जिन्हे कि परिग्रह छोड़ते ही अन्तर्मुहूर्तमे केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, रुद्रोंमें ग्यारहवां रुद्र महादेव, नव हरि अर्थात् नारायणोंमे नववे नारायण श्रीकृष्ण, चौदह कुलकरोंमे नाभिराजा और वलवती भुजावालोंमे अर्थात् पराक्रमियोंमे कुन्तीका पुत्र भीम (पांडव) वहुत प्रसिद्ध हुआ।

यो तो शलाका पुरुषोमे सव ही प्रसिद्ध है परन्तु लोकमे उनमेसे उक्त पुरुष वहुत ही प्रसिद्ध हुए है।

सम्पूर्ण द्वीपसमुद्रोके चन्द्रमाओकी गिनती।

सवया इकतीसा।

जंबूदीप दोय लवनांवुधिमैं चारि चंद.
धातखंड वारै कालोदधि वियालीस हैं ॥
पुष्करके भाग दोय ईधर वहत्तरि हैं.
ऊधे वारैसै चौसठि भासे जगदीस हैं ॥
पुष्कर जलधि सार दो सत ग्यारै हजार.
आगैं आगैं चौगुनैं वखानैं निसदीस हैं।
जेते लाख तेते वले दूने दूने अधिके हैं.
सवमैं असंख चैताले वंदत मुनीस हैं ॥५०॥

अर्थ—जम्बूद्वीपमें २, लवणसमुद्रमें ४, धातकी खंडमें १२ और कालोदधिमें ४२ चन्द्रमा हैं। आगे पुष्करद्वीप है। उसके दो भाग हैं। इधरके पहिले भागमें ७२ और उधरके दूसरे भागमें १२६४ चन्द्रमा हैं। ऐसा जगदीश अर्थात् जिनेन्द्र भगवानने कहा है। पुष्करद्वीपके आगे पुष्कर समुद्रमें ११२०० चन्द्रमा हैं और उसके आगे-समुद्रसे चौगुने समुद्रमें और द्वीपसे चौगुने द्वीपमें हैं। ढाई द्वीपसे आगेके द्वीप और समुद्र जो जितने लाख योजनके हैं, उनमें उतने ही वलय हैं और प्रत्येक वलयमें दो दो चन्द्रमा होते हैं। इसलिये वलयोंसे दूने दूने अधिक चन्द्रमा होते गये हैं। इन सब चन्द्रमाओंमें असंख्यात जिनचैत्यालय हैं। उनकी मुनिगण वन्दना करते हैं।

---

१ पूर्व पूर्व द्वीप और समुद्रके चन्द्रमाओंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप और समुद्रके चन्द्रमाओंका प्रमाण चौगुना चौगुना है। परन्तु इतना विशेष है कि उत्तर द्वीप और समुद्रके वलयोंके प्रमाणसे दूना प्रमाण उस चौगुनी संख्यामें और मिलाना चाहिये। जैसे पूर्व पुष्करसमुद्रके चन्द्रमाओंकी संख्या ११२०० है, जिसको चौगुना करनेसे ४४८०० हुए। इसमें उत्तरद्वीपके वलयोंके प्रमाण ६४ के दूने १२८ मिलानेसे उत्तरद्वीपके चन्द्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ होता है। इसही प्रकार आगे जानना।

२ जम्बूद्वीपमें एक, लवण समुद्रमें दो, धातकी खंडमें छह, कालोदधिमें इक्कीस और पुष्करके पूर्वार्धमें छत्तीस वलय (परिधि) हैं। आगेके वलयोंके प्रमाणमें विशेषता है। पुष्करका उत्तरार्ध आठ लाख योजनका है इसलिये उसमें आठ वलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२ लाख योजनका है, इसलिये उसमें ३२ वलय हैं।

अधोलोकके चैत्यालयोकी संख्या ।

कवित्त (३१ मात्रा) ।

चौसठि लाख असुर जिनमंदिर,
लाख चौरासी नागकुमार ।
हेमकुमार सुलाख वहत्तरि,
छह विध लाख छहत्तरि धार ॥
लाख छानवै वातकुमार,
पताललोक भावन दस सार ।
सात कोरि सब लाख वहत्तरि,
चैत्याले वन्दौं सुखकार ॥५१॥

अर्थ—असुरकुमार देवोके भवनोमे ६४ लाख, नाग कुमारोंके भवनोमे ८४ लाख और हेमकुमारोंके भवनोमे ७२ लाख अकृत्रिम जिनचैत्यालय है । आगे जो छह प्रकारके कुमार अर्थात् विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, मेघ-कुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार देव है, उनके भवनोमे छिहत्तर छिहत्तर लाख और वायुकुमारोंके भवनोमे ९६ लाख चैत्यालय है। इस प्रकार पाताल लोक-वासी दश प्रकारके देवोके भवनोमे सात करोड़ वहत्तर लाख जिनमंदिर है। उनकी मै वन्दना करता हूं। वे सुखके देनेवाले है। अर्थात् उनके स्मरण, वन्दनसे पुण्यबंध होता है और पुण्यबन्धसे सुख प्राप्त होता है ।

मध्यलोकके चैत्यालय ।

छप्पय ।

पंचमेरुके असी, असी वक्षार विराजें ।
गजदंतनपै बीस, तीस कुलपर्वत छाजें ॥
सौ सत्तर बैताड धार, कुरुभूमि दसोत्तर ।
इष्वाकार पहार, चार चव मानुषोत्रपर ॥
नंदीसुर बावनि रुचिकमें, चार चार कुंडल सिखर ।
इम मध्यलोकमें चारिसे, ठावन वंदों विघनहर ॥

अर्थ—मध्यलोकमें ४५८ अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। उनका विवरण इस प्रकार हैः—ढाई द्वीपमें पांच मेरुपर्वत हैं और प्रत्येक मेरुपर सोलह सोलह चैत्यालय हैं। इस तरह पंचमेरुके ८०। एक एक मेरुके पूर्व पश्चिम विदेहक्षेत्रोंमें सोलह सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वतपर एक एक मन्दिर है। इस तरह सब वक्षार पर्वतोंके ८०। एक एक मेरु संबंधी चार चार गजदन्तपर्वत हैं। इनपर भी एक एक चैत्यालय है। इस तरह गजदन्तोंके २०। एक एक मेरुसंबंधी छह छह कुलाचल हैं; उनपर ३०। एक एक मेरुसंबंधी चौंतीस चौंतीस वैताढ्य पर्वत हैं, उनपर १७०। एक एक मेरुसम्बन्धी देवकुरु और उत्तरकुरु नामक दो दो भोगभूमियां हैं; वहांपर १०, इष्वाकार पर्वतपर ४, मानुषोत्तर पर्वतपर ४, नन्दीश्वरद्वीपमें ५२, रुचिक द्वीपके रुचिक पर्वतपर ४ और कुंडलद्वीपके कुंडलगिरिपर

४; इस तरह ६८। इन सब ४५८ चैत्यालयोंकी मैं वन्दना करता हूं। ये सब विघ्नोंके हरण करनेवाले हैं।

ऊर्ध्वलोकके अकृत्रिम चैत्यालय।

सवया इकतीसा।

प्रथम वत्तीस दूजें अट्ठाईस तीजें बारे,
चौथें आठ पांचें छट्टें चार लाख ख्यात हैं।
सातें आठमें पचास नौमें दसमें चालीस,
ग्यारें बारें छै हजार चारों सत सात हैं॥
अधो एक सत ग्यारै मध्य एक सत सात,
ऊरध इक्यानू नव नवोत्तरें जात हैं।
पंचोत्तरे चवरासी लाख सत्तानू हजार,
तेईस चैत्याले सब वन्दौं अघघात हैं॥ ५३॥

अर्थ—पहले सौधर्मस्वर्गमे ३२ लाख. दूसरे ईशानस्वर्गमे २८ लाख. तीसरे सनत्कुमारस्वर्गमे १२ लाख, चौथे माहेन्द्रस्वर्गमे ८ लाख. पाचवे ब्रह्म और छठे ब्रह्मोत्तरस्वर्गमे ४ लाख. सातवे लांतव और आठवे कापिष्टस्वर्गमे ५० हजार. नववे शुक्र. दशवे महाशुक्र स्वर्गमें ४० हजार. ग्यारहवे बारहवे सतार सहस्रार स्वर्गमे ६ हजार, तेरहवे चौदहवे पन्द्रहवे सोलहवे आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चारो स्वर्गोमे ७००. अधोग्रैवेयकमे १११, मध्यग्रैवेयकमे १०७, ऊर्ध्वग्रैवेयकमे ९१. नवोत्तर अर्थात् अनुदिश विमानोमे ९ और पंचोत्तर विमानोंमें ५: इस तरह

मध्यलोकके चैत्यालय ।

छप्पय ।

पंचमेरुके असी, असी वक्षार विराजें ।
गजदंतनपे वीस, तीस कुलपर्वत छाजें ॥
सौ सत्तर वैतार धार, कुरुभूमि दसोत्तर ।
इष्वाकार पहार, चार चव मानुषोत्रपर ॥
नंदीसुर बावनि रुचिकमें, चार चार कुंडल सिखर ।
इम मध्यलोकमें चारिसे, अठवन वंदों विघनहर ॥

अर्थ—मध्यलोकमें ४५८ अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। उनका विवरण इस प्रकार हैः—ढाई द्वीपमें पांच मेरुपर्वत हैं और प्रत्येक मेरुपर सोलह सोलह चैत्यालय हैं। इस तरह पंचमेरुके ८०। एक एक मेरुके पूर्व पश्चिम विदेह-क्षेत्रोंमें सोलह सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वतपर एक एक मन्दिर है। इस तरह सब वक्षार पर्वतोंके ८०। एक एक मेरु संबंधी चार चार गजदन्तपर्वत हैं। इनपर भी एक एक चैत्यालय है। इस तरह गजदन्तोंके २०। एक एक मेरुसंबंधी छह छह कुलाचल हैं; उनपर ३०। एक एक मेरुसंबंधी चौंतीस चौंतीस वैताढ्य पर्वत हैं, उनपर १७०। एक एक मेरुसम्बन्धी देवकुरु और उत्तरकुरु नामक दो दो भोगभूमियां हैं; वहांपर १०, इष्वाकार पर्वतपर ४, मानुषोत्तर पर्वतपर ४, नन्दीश्वरद्वीपमें ५२, रुचिक द्वीपके रुचिक पर्वतपर ४ और कुंडलद्वीपके कुंडलगिरिपर

४; इस तरह ६८ । इन सव ४५८ चैत्यालयोंकी मैं वन्दना करता हूं । ये सव विघ्नोंके हरण करनेवाले हैं ।

ऊर्ध्वलोकके अकृत्रिम चैत्यालय ।

सवया इकतीसा ।

प्रथम वत्तीस दूजें अट्ठाईस तीजें वारे,
चौथें आठ पांचें छहें चार लाख ख्यात हैं ।
सातें आठमें पचास नौमें दसमें चालीस,
ग्यारें वारें छै हजार चारौं सत सात हैं ॥
अधो एक सत ग्यारै मध्य एक सत सात,
ऊरध इक्यानू नव नवोत्तरें जात हैं ।
पंचोत्तरे चवरासी लाख सत्तानू हजार,
तेईस चैत्याले सव वन्दौं अघघात हैं ॥ ५३ ॥

अर्थ—पहले सौधर्मस्वर्गमें ३२ लाख दूसरे ईशानस्वर्गमें २८ लाख तीसरे सनत्कुमारस्वर्गमें १२ लाख, चौथे माहेन्द्रस्वर्गमें ८ लाख. पाचवे ब्रह्म और छट्टे ब्रह्मोत्तरस्वर्गमें ४ लाख. सातवे लांतव और आठवे कापिष्टस्वर्गमें ५० हजार नववे शुक्र. दशवे महाशुक्र स्वर्गमें ४० हजार. ग्यारहवे वारहवे सतार सहस्रार स्वर्गमें ६ हजार, तेरहवे चौदहवे पन्द्रहवे सोलहवे आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चारों स्वर्गोमें ७००. अधोग्रैवेयकमें १११, मध्यग्रैवेयकमें १०७. ऊर्ध्वग्रैवेयकमें ९१. नवोत्तर अर्थात् अनुदिश विमानोंमें ९ और पंचोत्तर विमानोंमें ५. इस तरह

ऊर्ध्वलोकके सब मिलाकर जो ८४९७०२३ जिन चैत्या-लय पापोंके नाश करनेवाले हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूं।

सौधर्म इन्द्रकी सेनाकी गणना।

इंद्रसेन सात हाथी घोरे रथ प्यादे वैल,
गंधरव नृत्य सात सात परकार हैं।
आदि चौरासी हजार आगें पट दूने दूने,
एक कोरि छे लाख अड़सठ हजार हैं॥
एते गज तेते तेते छह भेद सबके ते,
सात कोरि छियालीस लाख निरधार हैं।
सहस छिहत्तर हैं औ एक अवतार न्योग,
पुन्यकर्म भोग भोग मोखकों सिधार हैं॥५४॥

अर्थ—सौधर्मस्वर्गके इन्द्रकी सेना सात प्रकारकी है-हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा, वैल, गन्धर्व और नर्तक। और इस सात प्रकारकी सेनाके सात सात प्रकार और भी हैं। आदिकी अर्थात् पहली सेनामें ८४ हजार हाथी हैं और आगेकी छह सेनाओंमें इनसे दूने दूने हाथी हैं। इस हिसावसे सव मिलाकर १०६६८००० हाथी है। जितने ये हाथी हैं, उतने ही घोड़े रथ आदि हैं। सव सेनाकी गिनती हाथी घोड़े आदि मिलाकर ७४६७६००० है। इस सौधर्म इन्द्रका केवल एक अवतार धारण करनेका नियोग होता है। पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए इस महान् वैभवको

भोगकर यह यहांसे च्युतहोकर एक मनुष्य जन्म धारण करके मोक्षको सिधारता है।

इन्द्रियोंके विषयकी सीमा।

छप्पय।

फरस चारिसै धनुष, असेनीलौं दुगुना गनि।
रसना चौसठि धनुष, घ्रान सौ तेइंद्री भनि॥
चख जोजन उनतीस, सतक चौवन परवानो।
कान आठसै धनुष, सुनै सेनी सो जानो॥
नव जोजन घ्रान रसन फरस,
कान दुवादस जोजना।
चख सैतालीस सहस दुसै,
तेसठि देखै जिन भना॥ ५५॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। इसकी स्पर्शन इन्द्रियका विषय ४०० धनुष्य का होता है। आगे दोइन्द्रियसे लेकर असैनी पंचेन्द्री तकके जीवोंके जो स्पर्शन इंद्रिय होती है उसका विषय दूना दूना है। अर्थात् दोइंद्रियकी स्पर्शन इन्द्रियका विषय ८०० तेइन्द्रियका १६०० चोइंद्रियका ३२०० और असैनी पंचेंद्रियका ६४०० धनुष है। दो इंद्रिय जीवोंके स्पर्शनके सिवा रसना (जीभ) इंद्रिय और होती है। इसका विषय ६४ धनुषका है। आगे तेइंद्रिय चोइंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोंकी रसनाका विषय भी दूना दूना अर्थात्

क्रमसे १२८, २५६ और ५१२ धनुपका है । तेइंद्रिय जीवोंके पहली दो इंद्रियोंके सिवा एक घ्राण (नाक) इंद्रिय और होती है। इसका विषय १०० धनुप है और चौ इंद्रिय तथा असेनी पंचेद्रिय जीवोंकी घ्राण इंद्रियका विषय पूर्वसे दूना दूना अर्थात् २०० और ४०० धनुपका है। चौ इंद्रिय जीवोंके पहले कही हुई तीन इंद्रियोंके सिवा एक नेत्र इंद्रिय और होती है । इसका विषय २९५४ योजनका है। इससे दूना अर्थात् ५९०८ योजन असेनी पंचेन्द्रियकी नेत्र इंद्रियका विषय है। असेनी पंचेंद्रियके चौ इंद्रियसे एक कान इंद्रिय और अधिक होती है। अर्थात् जो सुनता है सो असेनी पंचेद्रिय है। इसका विषय ८०० धनुषका है। पंचेंद्रिय जीवोंकी इंद्रियोंका विषय इस प्रकार है;—घ्राण (नाक) का ९ योजन, रसना, स्पर्श और कानका वारह वारह योजन और नेत्रद्वारा पंचेंद्रिय जीव ४७२६३ योजनतक देख सकता है। इस प्रकार जिन भगवानने कहा है।

यहां इंद्रियोंके विषयकी उत्कृष्ट सीमा बतलाई है। इसका अभिप्राय यह है कि एकेन्द्रियादि जीवोंकी इंद्रियां अधिकसे अधिक इतने दूरतकके पदार्थोंका ज्ञान कर सकतीं हैं। इससे आगेके पदार्थोंका वे विषय नहीं कर सकती हैं। पंचेन्द्रिय जीवोंमें पांचों इंद्रियोंका उत्कृष्ट विषय जो ऊपर कहा है, वह चक्रवर्तीके होता है, अन्य सामान्य जीवोंके नहीं।

केवली समुद्घात करते है, तब उनके कौन कौन योग होते है ?

सवैया इकतीसा ।

पहलैं समैमैं करैं दंड आठमैं संवरैं,
परदेस आतम औदारिक प्रमानिए ।
दूसरैं कपाट होंय सातमैं संवरैं सोय,
संवरैं प्रतर छट्ठे मिस्र जोग जानिए ॥
तीसरैं प्रतर, चौथैं पूरत सरव लोक,
पूरन संवरैं पांचैं कारमान मानिए ।
आठ समैमाहिं जात केवल समुदघात,
निर्जरा असंख गुनी देव सो वखानिए ॥ ५६ ॥

अर्थ—मूल शरीरके विना छोड़े जीवके प्रदेशोंके शरीरसे वाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं। चौदहवे गुणस्थानके अन्तमे जव आठ समय वाकी रह जाते है, तव गोत्र वेद और नामकर्मकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके समान करनेके लिये केवली भगवानके आत्मप्रदेश शरीरसे वाहर निकलते है और पहिले समयमे दंडेके आकार होते है जव कि जीव सुमेरुपर्वतके आठ मध्य प्रदेशोंपर आ-

---

१ जिन मुनियोंको आयुके छह महीना शेष रहनेमें पहले केवलज्ञान होता है, वे मुनि नियमसे समुद्घात करते है। परन्तु जिनके छह महीनेसे पहले केवलज्ञान हो जाता है, वे समुद्घात करते भी है और नहीं भी करते है—कुछ नियम नहीं है।

त्माके आठ मध्य प्रदेश स्थापित करके बाकीके आत्म-प्रदेशोंको तिरछे शरीराकार रखता हुआ ऊपर नीचेकी तरफ वातवलयोंको छोड़कर चौदह राजूतक विस्तृत करता है। दूसरे समयमें किवाड़ सरीखे होते हैं जब कि वे प्रदेश उत्तर दक्षिण की तरफसे शरीराकार बने रहकर पूर्व, पश्चिमकी तरफ वातवलयके सिवा लोकपर्यंत पसर जाते हैं। तीसरे समयमें प्रतररूप होते हैं जब कि जो प्रदेश दूसरे समयमें उत्तर दक्षिणकी तरफ शरीराकार बने रहे थे वे उत्तर दक्षिणकी तरफ भी वातवलयके सिवा लोक पर्यंत फैल जाते हैं और चौथे समयमें लोकपूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सारे लोकमें व्याप्त हो जाते हैं। फिर पांचवें समयमें प्रतररूप, छठे समयमें कपाटरूप और सातवें समयमें दंडरूप होकर आठवेंमें संकुचित होकर शरीरमें समा जाते हैं। इन आठ समयोंमें आत्माके औदारिक कायादि कौन कौन योग होते हैं वे इन सवैयामें बतलाये हैं:— जब आत्माके प्रदेश पहिले समयमें दंड-रूप होते हैं और आठवेंमें संकुचित होते हैं, उस समय औदारिक काययोग होता है। दूसरे समयमें जब कपाट-रूप होते हैं और सातवेंमें कपाट अवस्थासे संकुचित होते हैं तथा छठे समयमें जब प्रतरका संवरण होता है, तब औदारिकमिश्र योग होता है। तीसरे समयमें जब प्रतर रूप होते हैं, चौथेमें जब सारे लोकको पूर्ण करते हैं और पांचवेंमें जब लोकपूर्ण अवस्थाका संवरण करते हैं, तब कार्माण योग होता है। इस तरह आठ समयोंमें केवल-

समुद्धात होता है. जिनमे असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। ऐसा जिनदेवने कहा है।

मिथ्यातीकी मुक्ति न हो, सम्यक्तीकी हो।

एक समैमाहिं एकसमैपरवद्ध वँधै,
एक समै एकसमैपरवद्ध झरै है।
वर्गना जघन्यसैं अभव्यसौं अनंतगुनी,
उतकिष्ट सिद्धकौ अनंत भाग धरै है॥
जैसैं एक गास खाय सात धात होय जाय
तैसैं एक सातकर्मरूप अनुसरै है।
यौं न लहै मोख कोइ जाके उर ग्यान होइ.
एकसमै वहु खोइ सोइ सिव वरै है॥५७॥

अर्थ—जवतक मिथ्यात्व परिणाम रहते हैं, तवतक आत्मा कर्मोंसे नहीं छूट सकता है। जव सम्यक्त्व परिणाम होते हैं तव ही वह कर्मोंसे मुक्त होता है। इसी वातको वतलाते हैं— मिथ्याती जीव एक समयमें एक-समय-प्रवद्ध कर्मवर्गणाओंका वंध करता है और एक समयमें एक-समयप्रवद्ध वर्गणाओंको ही खहाता है। (एक समयमें जितने कर्मपरमाणुओंका वंध होता है उनको समयप्रवद्ध कहते हैं। इन समयप्रवद्ध कर्मपरमाणुओंमें अनन्त कर्मवर्गणायें होती हैं।) जघन्य वर्गणाका प्रमाण

१ [illegible]

अभव्य जीवोंकी संख्यासे अनन्त गुना और उत्कृष्ट वर्गणाका सिद्धजीवसंख्याके अनन्तवें भाग होता है। जिस तरह एक तरहके ग्रासका भोजन करनेसे परिपाकमें उससे रक्त, मांस, मज्जा, वीर्य आदि सात धातुएँ बनती हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व परिणामोंसे बांधी हुई उक्त कर्म-वर्गणाओंका सातकर्मरूप परिणमन होता है। इस लिये कोई जीव यों ही सहज मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। क्योंकि इस तरह कर्मोंका आवागमन बराबर होता रहता है। कर्म बराबर सत्तामें बने रहते हैं। जिसके हृदयमें आत्म शरीरादि संबंधी भेद-विज्ञान हो जाता है, वह समकिती जीव भेदज्ञानके बलसे प्रत्येक समय बंधकी अपेक्षा अधिक कर्मोंको क्षय करता है अर्थात् उसके बंध थोड़ा होता है और निर्जरा बहुत होती है, इसलिये वही, मुक्ति सुन्दरीका वरण करता है।

आठ कर्मोंके आठ दृष्टान्त।

देवपै पर्यौ है पट रूपकौ न ग्यान होय,
जैसें दरवान भूप-देखनौं निवारै है।
सहत लपेटी असिधारा सुखदुखकार,
मदिरा ज्यौं जीवनकौं मोहिनी विथारै[1] है।
काठमें दियौ है पाँव करै थितिकौ सुभाव,
चित्रकार नाना नाम चीतंके[2] समारै है।

---

१ विस्तृत करता है—मोहनीका विस्तार करता है। २ चित्रित करके—बना करके।

चें[1]क्री ऊंच नीच घैरै[2] भूप दीयौ मैनै[3] करै,
एई आठ कर्म हरै सोई हमैं तारै है ॥ ५८ ॥

अर्थ—देवकी मूर्तिपर यदि कपड़ा पड़ा हुआ हो, तो जिस तरह उसका ज्ञान नहीं होता है—उसका रूप नही दिखता है. उसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्मका परदा पड़नेसे आत्माका ज्ञान गुण ढंक जाता है। जिस तरह दरवान अर्थात् पहरेदार राजाका दर्शन नहीं करने देता है, उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म आत्माके दर्शनगुणका दर्शन नही होने देता है। जिस तरह शहदमे लिपटी हुई तलवारकी धार चाटनेसे मीठी लगती है और साथ ही जीभको काट डालती है, उसी प्रकारसे वेदनी कर्म आत्माको सुखी. दुःखी करता है। यह कर्म आत्माके अव्यावाध गुणका घात करता है। जिस तरह शराव जीवोंपर मोहनीका अर्थात् वेहोशीका (अज्ञानका वावलेपनका) विस्तार करती है, उसी प्रकारसे मोहनी कर्म आत्माको मोहित कर डालता है। इस कर्मके संयोगसे जीव परपदार्थोंमे इष्ट तथा अनिष्टकी कल्पना करता है और तद्रूप आचरण करता है। अर्थात् इससे जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुणका घात होता है। जिस तरह चोरका पैर काठमें दे देनेसे वह काठ उसकी स्थिति करता है—उसको कहीं हिलने चलने नहीं देता है, उसी प्रकारसे आयु कर्म जीवकी भवभवमें स्थिति करता है। जव तक एक शरीरकी आयु पूरी नहीं हो

---

१ चक्रवाला अर्थात् कुम्भार। २ घटता है—वनाता है। ३ रोकता है।

जाती है, तब तक जीव दूसरे शरीरमें नहीं जासकता है। इसमें अवगाह गुणका घात होता है। जिस प्रकार चित्रकार नानाप्रकारके चित्र बनाकर उनके जुदा जुदा नाम रखता है, उसी प्रकारसे नाम कर्म एकेन्द्रियादि नामवाले शरीर बनाता है। यह कर्म आत्माके सूक्ष्मत्व गुणका घात करता है। जिस प्रकारसे कुम्हार ऊँचे नीचे अर्थात् छोटे बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकारसे गोत्र कर्म ऊँच नीच कुलमें जीवको उत्पन्न करता है। और जिस प्रकार भंडारी राजाको दान करनेसे रोकता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म दान लाभ भोग और उपभोगमें रुकावट करता है। इन आठों कर्मोंका जिन्होंने हरण किया है, वे ही (सिद्धपरमेष्टी) हमको तारनेमें समर्थ हैं।

चौदह गुणस्थानोंमें सत्तावन आस्रव।

पचपन अरु पचास तेतालिस,
छयालिस सैंतिस चौविस जान।
बाइस ठाइस सोलह दस अरु,
नव नव सात अंत न बखान॥
चौदै गुणथानकमें इह विध,
आस्रवद्वार कहे भगवान।
मूल चार उत्तर सत्तावन,
नास करौ धरि संवरध्यान॥ ५९॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें ५५ आस्रव होते

हैं। आहारक और आहारकमिश्र ये दो नहीं होते हैं। दूसरे सासादन गुणस्थानमे ५० आस्रव होते हैं-पांच मिथ्यात्व, एक आहारक और एक आहारकमिश्रयोग ये सात नहीं होते है। तीसरे मिश्र गुणस्थानमे ४३ आस्रव होते है-१४ आस्रव नही होते हैः—५ मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुवन्धी, २ आहारक और औदारिकमिश्र वैक्रियकमिश्र, कार्माण ये तीन। चौथे अव्रत गुणस्थानमे ४६ आस्रव होते है-ऊपरके ४३ और अंतके ३ मिश्र मिलाकर। पांचवे देशविरति गुणस्थानमे ३७ आस्रव होते हैं। ऊपरके ४६ मेसे ४ अप्रत्याख्यानकषाय, ४ योग, और एक त्रसवध इस तरह ९ घटा देना चाहिए। छट्ठे प्रमत्तसंयममे २४ आस्रव होते हैः— ४ संज्वलन कषाय, ९ हास्यादि नोकषाय, ९ योग और २ आहारक। सातवे अप्रमत्तमे २२ होते हैः—४ संज्वलनकषाय, ९ योग और ९ हास्यादि नोकषाय। आठवे अपूर्वकरणमे ऊपरके ही २२ आस्रव होते है। नववे अनिवृत्तिकरणमे १६ आस्रव होते हैः— ९ योग, ४ संज्वलन कषाय और ३ वेद। दशवे सूक्ष्मसाम्परायमे १० आस्रव होते हैः— ९ योग और १ सूक्ष्म लोभ। ग्यारहवे उपशान्तकषायमे इन्हीं ९ योगोका आस्रव होता है, वारहवे क्षीणमोहमे भी इन्ही ९ योगोका आस्रव होता है और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थानमे ३ काययोग. २ वचनयोग और २ मनोयोग इस तरह सातका आस्रव होता है और अन्तके चौदहवे अयोगकेवली गुणस्थानमें आस्रव सर्वथा

नहीं होता है। इस तरह भगवान केवलीने बतलाया है कि कौन कौन गुणस्थानोंमें कितने कितने आस्रवद्वार होते हैं। आस्रवके मूल भेद चार हैं और उत्तर भेद ५७ हैं। हे भव्यो, संवरतत्त्वको जानकर इनके नाश करनेका प्रयत्न करो।

चौदह गुणस्थानोंमें १२० प्रकृतियोंका बन्ध।

इकसौ सतरे एक एकसौ,
चोहत्तर सतहत्तर मान।
सतसठ तेसठ उनसठ ठावन,
बाइस सतरे दसमैं थान॥
ग्यारम बारम तेरम साता,
एक बंध नहिं अंत निदान।
सब गुणथानक बँधैं प्रकृति इम,
निहचैं आप अबंध पिछान॥ ६०॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका बंध होता है। कर्मोंकी सब मिलाकर १४८ प्रकृतियां हैं। इनमेंसे स्पर्शादिक २० प्रकृतियोंका स्पर्शादिक ४ में और ५ बंधन और ५ संघातोंका पांच शरीरोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण भेद-विवक्षासे सब १४८ और अभेद

१. आस्रवके १ द्रव्यबन्धका निमित्तकारण, २ द्रव्यबन्धका उपादानकारण, ३ भावबन्धका निमित्तकारण और ४ भावबन्धका उपादानकारण ये चार भेद हैं।

विवक्षासे १२२ प्रकृतियां हैं। इनमेसे अनादि मिथ्यादृष्टी जीवके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन दोनोका वन्ध नहीं होता है। क्योंकि इन दोनोंकी सत्ता सम्यक्त्व परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन खंड करनेपर होती है। इसलिये अनादि मिथ्यादृष्टीकी वन्धयोग्य प्रकृतियां कुल १२० है। इनमेसे मिथ्यात्व-गुणस्थानमे तीर्थकर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका वंध नही होता है। क्योंकि इन तीनोका वंध सम्यग्दृष्टियोके ही होता है। इस तरह पहले गुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोका वन्ध होता है।

दूसरे सासादन गुणस्थानमे 'एक एकसौ' अर्थात् १०१ प्रकृतियोंका वंध होता है। अर्थात् ऊपर कही हुई ११७ प्रकृतियोंमेसे मिथ्यात्व. हुंडकसंस्थान. नपुंसकवेद. नरकगति. नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु. असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन. एकेन्द्रियजाति विकलत्रय तीन स्थावर. आताप सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन सोलह प्रकृतियोका वंध नही होता है।

तीसरे मिश्रगुणस्थानमे ७४ प्रकृतियोका वंध होता है। दूसरे गुणस्थानमे जिन १०१ प्रकृतियोका वंध होता है, उनमेसे अनन्तानुवन्धी क्रोध मान. माया लोभ स्त्यानगृद्धि. निद्रानिद्रा. प्रचलाप्रचला दुर्भग दुःस्वर अनादेय. न्यग्रोध संस्थान. स्वाति संस्थान कुब्जक संस्थान. वामन संस्थान. वज्रनाराच संहनन नाराच संहनन अर्धनाराच संहनन. कीलित संहनन अप्रशस्तविहायोगति. स्त्रीवेद.

नीचगोत्र, तिर्यंग्गति, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायुः और उद्योत इन २५ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे शेष रही ७६। इनमेंसे मनुष्यायु और देवायु ये दो और घटा देनी चाहिये। क्योंकि इस गुणस्थानमें किसी भी आयुकर्मका बंध नहीं होता है। इस तरह ७४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

चौथे गुणस्थानमें ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपर कही हुई ७४ और मनुष्यायु, देवायु तथा तीर्थंकर ये तीन, कुल ७७।

पांचवें गुणस्थानमें ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। चौथे गुणस्थानकी ७७ प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, और वज्रवृषभनाराच संहनन ये दश व्युच्छिन्न-प्रकृतियां घटा देनेसे ६७ रह जाती हैं।

छठे गुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपरके ६७ मेंसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन ४ को घटा देनेसे ६३ रहती हैं।

सातवें गुणस्थानमें ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। छठे गुणस्थानकी ६३ बन्धप्रकृतियोंमेंसे अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति, अरति, और शोकके घटानेसे शेष रहीं ५७, इनमें आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग इन दोके मिलानेसे ५९ होती हैं।

आठवें गुणस्थानमें ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपरकी ५९ मेंसे देवायुको घटानेसे ५८ प्रकृतियां बंधयोग्य रहती हैं।

नववें गुणस्थानमें २२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपरकी ५८ मेंसे नीचे लिखी ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको घटानेसे २२ रहती हैं:—निद्रा. प्रचला. तीर्थङ्कर. निर्माण प्रशस्तविहायोगति पंचेन्द्रियजाति तेजस शरीर कार्माण शरीर आहारक शरीर. आहारक अंगोपांग समचतुरस्र संस्थान. वैक्रियक शरीर वैक्रियक अंगोपांग देवगति. देवगत्यानुपूर्वी रूप रस गंध. स्पर्श अगुरुलघुत्व उपघात परघात उच्छ्वास त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक स्थिर. शुभ. सुभग सुस्वर आदेय हास्य रति जुगुप्सा और भय।

दशवें गुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपरकी २२ मेंसे पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध मान माया लोभको घटानेसे १७ रहती हैं।

ग्यारहवें बारहवें. और तेरहवें गुणस्थानमें केवल एक सातावेदनीय प्रकृतिका बंध होता है। दशवेंमें जिन १७ प्रकृतियोंका बंध होता है उनमेंसे ज्ञानावरणीयकी ५ दर्शनावरणीयकी ४ अन्तरायकी ५ यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन १६ को घटानेसे एक सातावेदनीय रह जाती है। अन्तके चौदहवें गुणस्थानमें किसी भी प्रकृति-का बन्ध नहीं होता है। वह अबन्धक अवस्था है। [illegible]

[illegible] गुणस्थानोंकी [illegible] है। विशेष
[illegible] जानना चाहिये।

चौदह गुणस्थानोंमें १२२ प्रकृतियोंका उदय।

इक सौ सतरे इक सौ ग्यारे,
सौ अरु सौ. चौ सत्तासीय।
इक्यासी छेहत्तरि बेहत्तरि
छ्यासठ अरु साठ उदीय॥
उनसठ सत्तावन ब्यालिस अरु
बारे प्रकृति उदै है जीय।
चौदे गुणथानककी रचना,
उदयभिन्न तुव सिद्ध सुकीय॥ ६१॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका उदय होता है। १२२ मेंसे सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकरप्रकृति इन पांच प्रकृतियोंका उदय इस गुणस्थानमें नहीं होता। दूसरे गुणस्थानमें १११ प्रकृतियोंका उदय होता है। पहले गुणस्थानकी ११७ मेंसे मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है। तीसरे गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। दूसरे गुणस्थानकी १११ प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रियादिक ४, और स्थावर

१, इन ९ व्युच्छिन्नि प्रकृतियोंके घटानेसे शेष रहीं १०२, उनमेसे नरकगत्यानुपूर्वीके विना (क्योंकि यह दूसरे गुणस्थानमें घटाई जा चुकी है) शेषकी तीन आनुपूर्वी घटानेसे (क्योंकि तीसरे गुणस्थानमें मरण न होनेसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं है) शेप रही ९९ और एक सम्यग्मिथ्यात्वका उदय यहां मिला। इस तरह इस गुणस्थानमे १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। चौथे गुणस्थानमें ' सौ चौ ' अर्थात् १०४ प्रकृतियोंका उदय होता है। ऊपरकी १०० प्रकृतियोमेसे व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्वके घटानेपर रही ९९, इनमे चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति इन पांचके मिलानेसे १०४ हुई। पांचवे गुणस्थानमे ८७ प्रकृतियोंका उदय होता है। पूर्वकी १०४ प्रकृतियोंमेसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी. नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनोदय और अयशःकीर्ति इन सत्तरह व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे ८७ रहती है। छट्ठे गुणस्थानमे ८१ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ८७ मेसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ व्युच्छिन्न प्रकृतियोके घटानेसे शेष रही ७०, इनमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग मिलानेसे ८१ प्रकृतियां होती है। सातवेंमें ७६ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ८१ मेंसे आहारक

शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिके घटानेसे ७६ प्रकृतियां रहती हैं। आठवेंमें ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ७६ मेंसे सम्यक्त्व प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्रासासृपाटिका ये तीन संहनन, इन चारका उदय नहीं होता है। नववेंमें ६६ का उदय होता है। पिछली ७२ मेंसे हास्य, रति, आरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन छहको घटानेसे ६६ रहती हैं। दशवें गुणस्थानमें ६० प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ६६ मेंसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन छहको घटानेसे ६० रहती हैं। ग्यारहवें गुणस्थानमें ५९ का उदय होता है। पिछली ६० मेंसे एक संज्वलन लोभका उदय यहां घट जाता है। बारहवेंमें ५७ का उदय होता है। पिछली ५९ में से वज्रनाराच और नाराच घटानेसे ५७ होती हैं। तेरहवें गुणस्थानमें ४२ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ५७ मेंसे ज्ञानावरणीयकी ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणीयकी ४, निद्रा और प्रचला इस तरह १६ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे ४१ रहीं, इनमें तीर्थंकरकी अपेक्षासे एक तीर्थंकर प्रकृतिको मिलानेसे ४२ हुई। चौदहवें गुणस्थानमें १२ का उदय रहता है। पिछली ४२ मेंसे इन तीस व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे १२ रहती हैं:—वेदनीय, वज्रवृषभनाराच, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगो-

पाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक। वे वारह प्रकृतियां ये हैः—वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेंद्रियजाति, सुभग, त्रस, वादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र। इस तरह चौदह गुणस्थानोंकी रचना है। निश्चयसे तेरा निज आत्मा इन सब कर्मोंके उदयसे भिन्न सिद्धस्वरूप है।

चौदह गुणस्थानोमे १२२ प्रकृतियोकी उदीरणा।

इक सौ सतरै इक सौ ग्यारै,सौ सौ चौ सत्तासी जान।
इक्यासी तेहत्तरि उनहत्तरि तेसठि सत्तावन मान॥
छप्पन चौवन उनतालिस तेरमैं अंत नाहीं परवान।
यह उदीरणा चौदै थानक,करै ग्यानवल सो तू जान

अर्थ—६१ वे कवित्तके अर्थमें चौदह गुणस्थानोंमें जितनी जितनी प्रकृतियोंका उदय वतलाया है, ठीक उतनी उतनी ही प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है और वह इस कवित्तमे वतलाई गई है। अन्तर सातवे, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवे और वारहवेमें केवल ३ प्रकृतियोंका पड़ता है और तेरहवे मे ९ का। वह इस तरहसे कि वहां सातवेंमे ७६ प्रकृतियोका उदय होता है, और यहां ७३ की उदीरणा होती है। क्योंकि चौदहवे गुणस्थानमें उदय तो १२ प्रकृतियोका रहता है, परन्तु उदीरणा वहां

नहीं है। इस लिये उन १२ प्रकृतियोंको तेरहवें गुणस्थान-की ३० प्रकृतियोंमें मिलानेसे उनकी संख्या ४२ होगई। जिनमेंसे तीन साता, असाता और मनुष्यायु तो छठे गुणस्थानमें उदीरित होती हैं और शेष ३९ की तेरहवेंमें उदीरणा होती है। बीचके सातवें, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवेंमें इन्हीं तीन प्रकृतियोंके कम हो जानेसे उदीरित प्रकृतियोंकी संख्या क्रमसे ७३, ६९, ६३, ५७, ५६, ५४ हो जाती है।

हे भव्य, तुझे जानना चाहिए कि चौदह गुणस्थानोंमें यह उदीरणा ज्ञानके बलसे होती है। इस लिए ज्ञानका सम्पादन कर।

चौदह गुणस्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता।

सवैया इकतीसा।

पहलै सौ अड़ताल दूजेमैं सौ पैंताल,
तीजेमाहिं सौ सैंताल चौथेमैं अठतालसौ।
पांचैं ग्रन सौ सैंताल छट्टैं सातैं आठैं नौमैं,
दसमैं ग्यारमैं उपसमी है छयालसौ॥
आठैं नौमैं सौ अड़तीस दशमैं इकसौ दोय,
बारमैं इकसौ एक आगैं पंद्रै टाल सौ।
तेरैं चौदमैं पिचासी सत्ता नास अविनासी,
नमौं लोक घन ऊरध राजू है सैंतालसौ॥६३॥

अर्थ—बाँधे हुए कर्म जबतक उदयमें नहीं आते हैं किंतु ज्योंके त्यों बद्ध बने रहते हैं तब तक उस अवस्थाको सत्ता कहते हैं। पहले और चौथे गुणस्थानमें १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता है। दूसरे गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारक शरीर, और आहारक अंगोपांग इन तीनको छोडकर १४५ की सत्ता है। तीसरेमें तीर्थंकर प्रकृतिको छोडकर और पाचवेमें नरकायुको छोडकर १४७ प्रकृतियोंकी सत्ता है। छट्ठे सातवेंमें और उपशमश्रेणीके आठवें, नवमें, दशवे और ग्यारहवेमे नरकायु और तिर्यगायुको छोडकर १४६ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले आठवें, नवमे गुणस्थानोमे ४ अनंतानुबंधी, ३ मिथ्यात्व और ३ आयु (देव पशु और नारक) को छोडकर १३८ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले दशवेमे १०२ की सत्ता है। नवमेंमे जो १३८ का सत्त्व है, उसमेंसे ये ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतिया घटानेसे १०२ होती हैः—तिर्यग्गति १, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी १, विकलत्रय ३, निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धि १, उद्योत १ आतप १, एकेन्द्रिय १ साधारण १ सूक्ष्म १, स्थावर १, अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रत्याख्यानावरण ४ नोकषाय ९ संज्वलन क्रोध १ मान १ माया १ नरकगति १ और नरकगत्यानुपूर्वी। बारहवेमे १०१ प्रकृतियोंकी सत्ता है। पिछली १०२ मेंसे एक सूक्ष्मलोभकी सत्ता घट जाती है। आगे तेरहवे और चौदहवे गुणस्थानमें 'पंद्रह टालसौ'-सौमेंसे पन्द्रह कम अर्थात् ८५ प्रकृ-

की ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणीयकी ४, निद्रा १ और प्रचला १ ऐसे १६ घटानेसे ८५ रहती हैं। चौदहवें गुणस्थानमें अंतके समयसे पूर्व समयमें ७२ और अन्तमें १३ की सत्ता नाश करके अविनाशी सिद्ध होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। वे १४७ राजू घनाकार लोकके ऊर्ध्व भागमें विराजमान होते हैं।

अन्तर्मुहूर्तके जन्म मरणोंकी गिनती।

भू जल पावक पौन साधारण पंच भेद,
सूच्छम वादर दस परतेक ग्यार हैं।
छैहजार वारै वारै जनम मरन धरै,
वे ते चौ इंद्री असी साठ चालिस धार हैं॥
चौइस पंचेंद्री सव छासठ सहस तीन,
सै छत्तीस, सै सैंतीस तेहत्तर सार हैं।
छत्तीससै पचासी स्वास अधिक तीजा अंस,
नमौ नाथ मोहि सव दुखसौं उधार हैं॥६४॥

अर्थ—अलब्धपर्याप्तक जीवोंके अन्तर्मुहूर्तमें कितने जन्म मरण होते हैं, यह इस पद्यमें वतलाया है। जो जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर पाता है, किंतु मुहूर्तके भीतर ही–पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहले ही-मर जाता है, उसे अलब्ध-पर्याप्तक या लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय,

अग्निकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय इन पांचके सूक्ष्म और वादरके भेदसे दश भेद हुए। इनमें एक प्रत्येक वनस्पतिकाय मिलानेसे ग्यारह भेद हुए। इन ग्यारहों लब्ध्यपर्याप्तक इतरनिगोद जीवोंके अन्तर्मुहूर्तमें छह हजार वारह वारह जन्म मरण होते हैं। दो इंद्रिय जीवोंके ८०, तेइंद्रियके ६०, चौइंद्रीके ४० और पंचेंद्री जीवोंके चौवीस चौवीस जन्म मरण होते हैं। इस तरह सब मिलाकर ६०१२+११+८०+६०+४०+२४=६६ ३३६ जन्म मरण अन्तर्मुहूर्तमें होते हैं। ३७७३ स्वास[1]का एक प्रमाण मुहूर्त होता है। एक स्वासमे अठारह वार जन्म मरण होता है. इसलिये ६६३३६ जन्म मरणमे $\frac{६६३३६}{१८}$=३६८५$\frac{१}{३}$ स्वास हुए। और इन ३६८५$\frac{१}{३}$ स्वासोंका एक अन्तर्मुहूर्त हुआ। मै अपने नाथ अर्थात् वीतरागदेवको नमस्कार करता हूं। मेरा इन जन्म मरणके दुःखोंसे वे ही उद्धार करेंगे।

घाती कर्मोकी ४७ प्रकृतिया।

मति सुत औधि मनपरजै केवलग्यान,
पंच आवरन ग्यानावरनी पंचभेद हैं।
चक्खु औ अचक्खु औधि केवलदरस चारि,
आवरन चारि निद्रा निद्रानिद्रा खेद हैं॥

---

१ जो बालक न हो, वृद्ध न हो, रोगी न हो, आलसी न हो, ऐसे स्वस्थ सुखी मनुष्यके स्वास इस प्रसगमें लिये गये हैं।

नर सुर आव च्यारि ऊंच नीच गोत है।
नामकी तिरानू एक सत एक अघातिया,
आदि तीन अंतराय थिति तीस होत है॥
नाम गोत वीस मोहनी सत्तरि कोराकोरी,
दधि थावकी सागर तेतीस उदोत है।
वेदनी चौवीस घरी सोलै नाम गोत पांचौं,
अंतर मुहूरत, विनासैं ग्यानजोत है॥६७॥

अर्थ—वेदनीय कर्मकी साता औ असाता ये २ प्रकृतियां, आयुकर्मकी नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु ये ४ प्रकृतियां, गोत्र कर्मकी उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये २ और नामकर्मकी ९३ इस तरह चार अघाती कर्मोंकी सब मिलाकर १०१ प्रकृतियां हैं।

आदिके तीन कर्म अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और वेदनीय और अन्तका अन्तराय; इन चारोंकी उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागरकी है। नाम कर्मकी और गोत्र कर्मकी २० कोड़ाकोड़ी सागरकी, मोहनीयकी ७० कोड़ाकोड़ी सागरकी और आयु कर्मकी ३३ सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति २४ घड़ी अर्थात् वारह मुहूर्त, नाम कर्म और गोत्र कर्मकी सोलह सोलह घड़ी, और शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय और आयुकर्म इन पांचोंकी अन्तर्मु-

हूर्त हैं । ज्ञानज्योति अर्थात् ज्ञानी महात्मा इन सबका नाश करते हैं ।

नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां ।

तन बंधन संघात वर्ण रस जात पंच,
संसथान संहनन षट आठ फास हैं ।
गति आनुपूरवी हैं चारि दो विहाय गंध,
अंग तीनि पैंसठि ये त्रस थूल भास हैं ॥
पर्यापति थिर सुभ सुभग प्रतेक जस,
सुसुर आदेय दो दो निरमान स्वास हैं ।
अपघात परघात अगुरु लघु आताप,
उदोत तीर्थंकरकौ वन्दौं अघनास हैं ॥६८॥

अर्थ—नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां हैं, जिनमेंसे ६५ पिंडप्रकृतियां हैं और २८ अपिंडप्रकृतियां हैं । पिण्ड-प्रकृतियां उनको कहते हैं कि जो एक एक भेदमें अनेक अनेक पाई जाती हैं । जिनके जुदा जुदा स्वतन्त्र नाम गिनाये गये हैं वे अपिंडप्रकृति कही जाती हैं । पहले अपिंड प्रकृतियां बतलाते हैं । पांच तन अर्थात् शरीर कर्म-१ औदारिक शरीर, २ वैक्रियिक शरीर ३ आहारक शरीर, ४ तैजस शरीर, और ५ कार्म्मण शरीर । पांच बन्धन कर्म—१ औदारिक बन्धन २ वैक्रियिक बन्धन ३ आहारक बन्धन, ४ तैजस बन्धन ५ कार्माण

बन्धन। पांच संघात हैं:—१ औदारिक शरीर संघात, २ वैक्रियिक शरीर संघात, ३ आहारक संघात, ४ तैजस संघात, ५ कार्माण संघात। पांच वर्णकर्म हैं:—१ काला, २ पीला, ३ लाल, ४ नीला, ५ सफेद। पांच रसकर्म हैं:—१ खट्टा, २ मीठा, ३ कडुआ, ४ तीखा, ५ कसैला। पांच जाति कर्म हैं—१ एकेंद्रिय जाति, २ दोइंद्रिय जाति, ३ तेइंद्रिय जाति, ४ चौइंद्रिय जाति ५ पंचेंद्रिय जाति। छह संस्थान कर्म हैं:—१ समचतुरस्र संस्थान, २ न्यग्रोध परिमंडल, ३ वामन, ४ स्वातिक, ५ कुब्जक, ६ हुंडक। छह संहनन कर्म हैं:—१ वज्र वृषभनाराच संहनन, २ वज्रनाराच संहनन, ३ नाराच संहनन, ४ अर्द्धनाराच संहनन, ५ कीलक संहनन, ६ असंप्राप्तासृपाटिक संह-नन। आठ स्पर्शकर्म हैं:—१ ठंडा, २ गरम, ३ हलका, ४ भारी, ५ नरम, ६ कठोर, ७ चिकना, ८ खुरदरा। चार गति कर्म हैं:—१ नरक गति, २ तिर्यंच गति, ३ मनुष्य गति, ४ देवगति। चार आनुपूर्वी कर्म हैं:—१ नरकगत्यानुपूर्वी, २ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, ३ मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, ४ देवगत्यानुपूर्वी। दो विहायोगति कर्म हैं:—१ प्रशस्तविहायोगति २ अप्रशस्तविहायोगति। दो गंधकर्म हैं:—१ सुगंध, २ दुर्गंध। तीन अंगोपांग कर्म हैं:—१ औदारिक अंगोपांग, २ वैक्रियिक अंगोपांग और ३ आहारक अंगोपांग। अब २८ अपिंड प्रकृतियां बतलाते हैं—१ त्रस, २ स्थावर, ३ स्थूल, ४ सूक्ष्म, ५ पर्याप्त, ६ अपर्याप्त, ७ स्थिर, ८ अस्थिर, ९ शुभ, १० अशुभ,

११ सुभग, १२ दुर्भग, १३ प्रत्येक, १४ साधारण, १५ यशःकीर्ति, १६ अयशःकीर्ति, १७ सुस्वर, १८ दुःस्वर, १९ आदेय, २० अनादेय, २१ निर्माण, २२ श्वासोच्छ्वास, २३ अपघात, २४ परघात, २५ अगुरुलघु, २६ आतप, २७ उद्योत और तीर्थकर । तीर्थकरदेवको मैं नमस्कार करता हू ।

जम्बूद्वीपके पूर्व पश्चिमका वर्णन ।

जंबूदीप एक लाख मेरु दस ही हजार,
भद्रसाल दो वन सहस चवालीसके ।
बाकी छयालीस आधौं आध दोनौं ही विदेह,
देवारन्य वन उनतीस सै बाईसके ॥
तीनौं नदी पौनैं चारि सत चारौं ही वख्यार,
दो हजार आठौं ही विदेह वच ईसके ।
सत्तरै सहस सात सत तीनि जोजनके,
नमौं चारि तीर्थकर स्वामी जगदीसके ॥६९॥

अर्थ—जंबूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन चौड़ा है। इसके बीचमे सुदर्शन मेरु है. जिसका चारों तरफ गोलाकार विस्तार दशहजार योजनका है। इसके पूर्व-पश्चिम भद्रशाल नामका एक एक वन है. जो प्रत्येक बावीस हजार योजनके विस्तारवाला है. इस तरह इन

---

१ महायोजन जो कि दो हजार कोसका होता है ।

दोनोंका विस्तार चवालीस हजार योजनमें है। इस तरह मेरु और दोनों भद्रशालवनोंका विस्तार मिलाकर ५४ हजार योजन हुआ। इसको एक लाखमेंसे घटाया, तो वाकी छियालीस हजार योजन रहे। इनमें तेईस तेईस हजारके दोनों विदेह हैं। इस तरह जम्बूद्वीपका एक लाख योजन पूर्व पश्चिम विस्तार है।

अव भद्रशाल वनसे लवणसमुद्रके तटतक जो विदेह क्षेत्र है, उसका विशेष वर्णन करते हैं:—विदेह क्षेत्रमें लवण समुद्रके तटसे लगा हुआ देवारण्य वन है, जो २९२२ योजनका है। और तीन नदियां हैं, जो प्रत्येक एकसौ पच्चीस पच्चीस योजनकी हैं। तीनों मिलाकर ३७५ योजनकी हैं। चार वक्षारगिरि नामके पर्वत हैं, जो दो हजार योजनके हैं अर्थात् प्रत्येक पांच पांचसौ योजनका है। आठ विदेह क्षेत्र हैं, जिनका विस्तार १७७०३ योजनका है। प्रत्येक क्षेत्र २२१२$\frac{7}{8}$ योजनका है। इस पूर्वविदेहके वन, नदी, पर्वत और क्षेत्रोंकी चौड़ाईका जोड़ तेईस हजार योजन होजाता है।

इसी तरह पश्चिम विदेहकी भी रचना है। नदी पर्वतादिकोंका विस्तार सव ऐसा ही है। नामादिका भेद है। नीलवन्त पर्वतपर केसरी नामका ह्रद (तालाव) है। उसमेंसे सीता नदी दक्षिणमुख होकर निकली है। वह माल्यवंत गजदन्त पर्वतमेंसे होकर, सुदर्शनमेरुका आधा चक्कर देती हुई, पूर्ववाहिनी होकर, पूर्व विदेहके वीचमेंसे लवण-

समुद्रमें जाकर मिली है। इस कारण पूर्वविदेहके आठ क्षेत्रोंके सोलह क्षेत्र हो गये हैं। ऐसे ही पश्चिम विदेहमेंसे सीतोदा नदी वही है और उससे पश्चिम विदेहके भी सोलह क्षेत्र हो गये है। दोनों विदेहोंके सव मिलाकर ३२ क्षेत्र हैं।

पूर्व विदेहमें श्रीमंधर और युग्मंधर तथा पश्चिमविदेहमें वाहु और सुवाहु इस तरह चार तीर्थकर विद्यमान हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। वे तीनों लोकोंके स्वामी हैं।

जम्बूद्वीपके दक्षिण उत्तरका वर्णन।

जंबूदीप दच्छिन उत्तर लाख जोजनकौ,
भाग एकसौ नव्वै एक भरत भाइए।
दोय हिमवन सैल चारि हेमवत खेत,
महा हिमवन आठ सोलै हरि गाइए॥
वत्तीस निपध ए तिरेसठ उधै त्रेसठ,
वीचमैं विदेह भाग चौंसठ वताइए।
भाग पांच से छवीस कला छह उन्निसकी,
अठत्तर चैत्यालय सदा सीस नाइए॥ ७०॥

अर्थ—जम्बूद्वीपका दक्षिण उत्तर विस्तार एक लाख योजनका है। इसके १९० भाग करनेसे जो एक भाग

अधोलोकके श्रेणीवद्ध बिलोंकी संख्या ।

सात नर्क भूमि उनचास पाथरे निवास,
इंद्रक भी उनचास वीचमाहिं बिले हैं ।
पहलौ सीमंत चारि दिसा सेनी उनचास,
चारि विदिसामैं अठताली भेद निले हैं ॥
आठ दिस सेनीवंध तीनिसै अठासी भए,
आगैं आठ आठ घटे अंत चारि मिले हैं ।
सव छयानवै सै चारि जोजन असंख धारि,
दया धरैं धर्म करैं तिनौं दुख गिले हैं ॥७१॥

अर्थ—नरक भूमियां सात है । उन सवमें ४९ पाथड़े (उत्तरभेद) हैं । प्रत्येक पाथड़ेमे कूपके आकारका गोल एक एक इन्द्रक है, इस लिये उनकी संख्या भी ४९ है । उनके वीचमें विल हैं । पहली भूमिमे १३ पाथड़े हैं, उनमें पहिला सीमन्तक नामका पाथड़ा या पटल है । उसकी चारों दिशाओंमें उनचास उनचास और और विदिशाओंमें अड़तालीस अड़तालीस श्रेणीवद्ध विल है । सो दिशाओंके १९६ और विदिशाओंके १९२ इस तरह आठों दिशाओके मिलकर ३८८ विल हुए । यह एक पटलका वर्णन हुआ । शेप ४८ पटल या पाथड़े रहे, सो उनके विलोंकी संख्या क्रमसे आठ आठ घटती हुई है । अर्थात् दूसरेकी ३८०, तीसरेकी ३७२, चौथेकी ३६४ और आगे

इसी तरह आठ आठ घटती हुई चली गई है, सो अन्तके पटलमें चार विल रह गये हैं । इस अन्तके पटलका नाम अवस्थान इन्द्रक है। इसकी विदिशाओंमें विल नहीं हैं, चार दिशाओंमें ही एक एक विल है। इन सब उनचासों पटलोंके विलोंकी संख्या ९६०४ है और उनका विस्तार असंख्यात योजन है। जो जीव दयाभाव धारण करते हैं और धर्म करते हैं, वे इन नरकोंके महान् दुःखोंसे बचते हैं।

ऊर्ध्वलोकके श्रेणीबद्ध विमान ।

ऊरध तिरेसठ पटल कहे आगममें,
तेसठ ही इंद्रक विमान बीच जानिए।
पहलौ जुगल ताके पहलेकौ रिजु नाम,
जाकी चारि दिसा सेनि बासठ प्रमानिए॥
चारों दोसें अड़तालीस आगें घटे चारि चारि,
अंत रहे चारि ऊंचे चारि ठीक ठानिए।
सेनीबंध उत्तर से सोलै जोजन असंख,
सिद्ध थौर जोजनपै ध्यानमाहिं आनिए ७२

अर्थ—ऊर्ध्वलोकमें अर्थात् स्वर्गोंमें ६३ पटल हैं। प्रत्येक पटलके बीचमें एक एक इंद्रक विमान है। अर्थात् इन्द्रक विमानोंकी संख्या भी ६३ है। पहले जुगलके अर्थात् सौधर्म ईशान स्वर्गोंके ३१ पटल हैं। इनमेंके

पहले पटलका नाम ऋजु विमान है। इस विमानकी चारों दिशाओंमे वासठ वासठ श्रेणीवद्ध विमान हैं अर्थात् सव दिशाओंके मिलाकर २४८ विमान हुए। यह एक पटलका वर्णन हुआ। इसके ऊपर जो शेप ६२ पटल हैं, उनके विमानोंकी संख्या ऊपर ऊपर क्रमसे चार चार कम होती गई है अर्थात् दूसरे पटलमे २४४, तीसरेमें २४०, और चौथेमे २३६ इस क्रमसे है। अन्तके सर्वार्थसिद्धि पटलमे केवल चार विमान हैं और उसके नीचेके ६२ वे आदित्य नामक पटलमे भी चार ही है। सम्पूर्ण पटलोंके सम्पूर्ण विमानोंकी संख्या ७८१६ है। वे असंख्यात योजनके विस्तारवाले है। अन्तके सर्वार्थ-सिद्धि पटलसे १२ योजनकी ऊंचाईपर अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान् हैं, उनको ध्यानमे लाना चाहिये अर्थात् उनका निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

लवणोदधिके १००८ कलशोंका वर्णन।

लौनोदधि वीच चारि दिसामाहिं चारि कूप,
कहे हैं मृदंग जेम तिनिकौ प्रमान है।
पेट और ऊंचे एक एक लाख जोजनके,
नीचैं औ मुख ताकौ दस हजार मान है॥
चारि विदिसामैं चारि पेट और ऊंचे दस,
हजार एक नीचे औ मुखकौ वखान है।

अन्तर दिसा हजार पेट ऊंचे हैं हजार,
नीचैं और मुख सौके धन्य जैनग्यान है ७३

अर्थ—जम्बूद्वीपके आसपास जो लवणोदधि समुद्र है, उसके वीचमें चारों दिशाओंमें चार कूप हैं। उनका आकार मृदंगके समान है। उनका पेट अर्थात् मध्यकी चौड़ाई और ऊंचाई एक एक लाख योजनकी है तथा वे नीचे तलीमें और मुंहपर दश दश हजार योजनके विस्तार-वाले हैं। दिशाओंके सिवाय विदिशाओंमें भी चार कूप हैं। उनका पेट और ऊँचाई दश दश हजार योजनकी और नीचेका तथा मुखका विस्तार हजार हजार योज-नका है। दिशा और विदिशाओंके वीचमें आठ अन्तर दिशाएँ हैं, उनमें एक हजार कूप हैं। अर्थात् प्रत्येक अन्तर दिशामें सवा सवा सौ कूप हैं। इनके पेटोंका विस्तार और ऊँचाई हजार हजार योजनकी है और नीचेका तथा मुंहका विस्तार सौ योजनका है। इस तरह सव मिलाकर १००८ कूप या वड़वानल हैं। ऐसे ऐसे परोक्ष विपयोंका वतलानेवाला जिन भगवानका ज्ञान धन्य है।

त्रेसठ इंद्रक विमान।

पैंतालीस लाखकौ है इंद्रक रिजूविमान,
सर्वारथ सिद्ध अंत एक लाखका कहा।
चवालीस घटे हैं तेसठमैं वासठि ठौर,
ऊंचे ऊंचे एक एक केता घटती लहा॥

सत्तर हजार नौसै सतसठ जोजन है,
तेइस अधिक भाग इकतीसका गहा।
तेसठ इंद्रक नाम तेसठ ही जिनधाम,
वंदौं मनवचकाय तिनकी सोभा महा ॥७१॥

अर्थ—पहले युगलका जो ऋजुविमान नामका पटल है, वह ४५ लाख योजनका है और अन्तका सर्वार्थसिद्धि नामका पटल एक लाख योजनका है। स्वर्गलोकके सारे पटलोंकी संख्या ६३ है। इस तरह ६२ स्थानोंमे ४४ लाख क्रमसे कम हुए है। तो अव देखना चाहिये कि एक दूसरे से कितने कितने कम होते गये है:—४४ लाखमे यदि ६२ स्थानोंका भाग दिया जायगा, तो यह कमी मालूम हो जायगी। $\frac{४४०००००}{६२}$=७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ अर्थात् सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ और एक योजनके ३१ भागोमेसे २३ भाग; इतना इतना विस्तार ऊपर ऊपरके पटलोंका कम होता गया है। इन ६३ इन्द्रकोमे ६३ ही अकृत्रिम जिनमंदिर है. जो अतिशय शोभायुक्त है। उनकी मैं मन वचन कायसे वन्दना करता हूं।

१२० प्रकृतियोका वंध और उदय।

देव गति आव आनुपूरवी प्रकृति तीन.
वैक्रियक अंग आहारक अंग चार हैं।
अजस ए आठौं ऊंचैं वंधैं नीचैं उदै दैंहि,
संज्वलन लोभ विना पंदरै निहार हैं॥

हास रति भै गिलानि नर-वेद नर-आव;
सूच्छम अपर्जापति साधारण धार हैं।
आतप मिथ्यात ए छवीस वंध उदै साथ,
नीचैं वंध ऊंचैं उदै छीयासी विचार हैं॥७५॥

अर्थ—देवगति, देवायु, और देवगत्यानुपूर्वी, ये तीन; वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये चार और अजस; सब मिलकर हुई आठ प्रकृतियां। ये आठों ऊपरके गुणस्थानोंमें बंधती हैं और नीचेके गुणस्थानोंमें उदय आती हैं। संज्वलन लोभको छोड़कर १५ कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया ये पन्द्रह और हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, पुरुषायु, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतप, और मिथ्यात्व ये ग्यारह इस तरह २६ प्रकृतियां जिस गुणस्थानमें बंधती हैं, उसीमें उदय आती हैं। इन २६+८=३४ प्रकृतियोंको छोड़कर शेष जो८६ प्रकृतियां हैं, उनका बंध नीचेके गुणस्थानोंमें होता है और उदय ऊंचेके गुणस्थानोंमें होता है।

हुंडकका पहले गुणस्थानमें, वामन, कुब्जक, स्वातिक, और न्यग्रोधपरिमंडलका दूसरे गुणस्थान पर्यन्त, और समचतुरस्रका आठवें गुणस्थानके छट्ठे भाग पर्यन्त, बन्ध

होता है । परन्तु उदय इन छहों संस्थानोंका तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है ।

वज्रवृषभनाराचका चौथे गुणस्थानतक, वज्रनाराच, नाराच, अर्ध नाराच और कीलकका दूसरे गुणस्थानतक और असंप्राप्तास्रपाटिकका वंध पहिले गुणस्थानमें है। और उदय अर्धनाराच, कीलक, स्फाटिकका सातवें गुणस्थानतक, नाराच, वज्रनाराचका ग्यारहवें तक और वज्रवृषभनाराचका तेरहवे गुणस्थानतक है ।

निर्माणका वंध आठवे गुणस्थानके छट्ठे भागतक और उदय तेरहवे गुणस्थानतक होता है ।

अप्रशस्तविहायोगतिका वंध दूसरे गुणस्थानतक और प्रशस्तविहायोगतिका आठवें गुणस्थानके छट्ठे भाग पर्यन्त होता है और उदय इन दोनोंका तेरहवे गुणस्थानतक होता है ।

उद्योतका वंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय पांचवें गुणस्थानतक होता है ।

अगुरुलघु, अपघात, परघात और स्वासोच्छ्वासका वन्ध आठवेके छट्ठे भाग तक और उदय तेरहवे तक होता है ।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका वंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय छट्ठे तक होता है ।

नरक आयु, नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वीका वंध पहिले गुणस्थानमे होता है और उदय चौथेतक होता है ।

होता है । परन्तु उदय इन छहों संस्थानोंका तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है।

वज्रवृषभनाराचका चौथे गुणस्थानतक, वज्रनाराच, नाराच. अर्ध नाराच और कीलकका दूसरे गुणस्थानतक और असंप्राप्तास्त्रपाटिकका वंध पहिले गुणस्थानमे है। और उदय अर्धनाराच. कीलक, स्फाटिकका सातवें गुणस्थानतक, नाराच, वज्रनाराचका ग्यारहवें तक और वज्रवृषभनाराचका तेरहवे गुणस्थानतक है।

निर्माणका वंध आठवे गुणस्थानके छट्ठे भागतक और उदय तेरहवे गुणस्थानतक होता है।

अप्रशस्तविहायोगतिका वंध दूसरे गुणस्थानतक और प्रशस्तविहायोगतिका आठवे गुणस्थानके छट्ठे भाग पर्यन्त होता है और उदय इन दोनोका तेरहवे गुणस्थानतक होता है।

उद्योतका वंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय पाचवें गुणस्थानतक होता है।

अगुरुलघु, अपघात. परघात और स्वासोच्छ्वासका वन्ध आठवेके छट्ठे भाग तक और उदय तेरहवे तक होता है।

निद्रानिद्रा. प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका वंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय छट्ठे तक होता है।

नरक आयु. नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वीका वंध पहिले गुणस्थानमें होता है और उदय चौथेतक होता है।

तिर्यंच गति और तिर्यंच आयुका बन्ध दूसरे गुणस्थानतक और उदय पांचवें गुणस्थान तक होता है।

तिर्यंच गत्यानुपूर्वीका बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय चौथे गुणस्थान पर्यन्त होता है।

मनुष्यगति और मनुष्यायुका बन्ध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है।

एकेन्द्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइन्द्रियका बंध पहले गुणस्थानमें होता है और उदय दूसरे गुणस्थान तक होता है।

औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांगका बंध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवेंके अन्तपर्यन्त है।

पंचेन्द्रियका बंध आठवें गुणस्थानके छठे भागतक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

तैजस कार्माणका बन्ध आठवेंके छठे भागतक है और उदय चौदहवेंके उपान्त्य समय तक है।

ज्ञानावरणकी ५ और दर्शनावरणकी ४ प्रकृतियोंका बन्ध दशवें पर्यन्त और उदय बारहवेंके अन्त चौदहवें समय तक होता है।

यशः कीर्ति और उच्च गोत्रका बंध दशवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थानके अन्त तक है।

सातावेदनीयका बंध तेरहवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

नीचगोत्रका वंध पहले गुणस्थानतक और उदय पांचवे गुणस्थान तक है ।

असाता वेदनीयका वंध छट्ठे गुणस्थान तक और उदय वारहवे गुणस्थान तक है ।

नपुंसक वेदका वंध पहले गुणस्थानमे है, और उदय नववे गुणस्थानके चौथे भागतक है ।

स्त्रीवेदका वंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय नववें गुणस्थानके चौथे भाग तक है ।

संज्वलन लोभका वंध नववे गुणस्थान पर्यन्त और उदय दशवे गुणस्थान तक है ।

अरति शोकका वंध छट्ठे गुणस्थान तक और उदय आठवे गुणस्थान तक है ।

निद्रा प्रचलाका वन्ध आठवे गुणस्थानके पहले भाग तक और उदय ग्यारहवे तक है ।

स्थावरका वंध पहले गुणस्थानमें और उदय दूसरे गुणस्थान तक है ।

त्रस, वादर और पर्याप्तका वंध आठवेके छट्ठे भाग तक और उदय चौदहवें पर्यन्त है ।

प्रत्येकशरीरका वन्ध आठवेके छट्ठे भागतक और उदय तेरहवें तक है ।

अस्थिर अशुभका वन्ध छट्ठे तक और उदय तेरहवे तक होता है ।

उसका अनन्तवां भाग काल भवपरावर्तन का है। नरक-गति तथा देवगतिका जघन्य आयु दशहजार वर्षका और उत्कृष्ट आयु तेतीससागरका; मनुष्यगति तिर्यंच-गतिका जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तका और उत्कृष्ट आयु तीन पल्यका है। इन चारों गतियोंका जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक आयु क्रमपूर्वक धारण करनेमे आयुके जितने भेद हो सकते हैं, उन सबको यथाक्रम पूर्ण करनेमें जितना समय लगता है, उसे एक [1]भवपरावर्तनका काल समझना चाहिये। इस भवपरावर्तनके कालसे अनन्तवाँ भाग काल कालपरावर्तनका है। वीस कोड़ाकोड़ीसागर-का एक कल्पकाल होता है। इसकालके जितने समय हैं, उन सब समयोंमे क्रमसे जन्म मरण धारण करनेको एक कालपरावर्तन कहते हैं। इस कालपरावर्तनके कालसे अनन्तवां भाग काल क्षेत्रपरावर्तनका होता है। क्षेत्र परावर्तन दो प्रकारका है, एक स्वक्षेत्रपरावर्तन और दूसरा परक्षेत्रपरावर्तन। सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवे भाग है और महामच्छकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लम्बी,

---

१ यहापर यह विशेषता है कि नरक गतिमे तो ३३ सागरकी उत्कृष्ट आयुष्य ली जाती है, परतु देवगतिकी उत्कृष्ट न लेकर केवल ३१ सागरतककी लेनी चाहिये। क्योंकि नवग्रैवेयकसे उपर जो ३१ सागरसे अधिक आयुष्यवाले देव होते है, वे सब सम्यग्दृष्टि ही होते है और इसी कारण दो सागरके जितने समय होते हैं उतने बार उन्हे फिर समारमें जन्म धारण करनेका प्रसग प्राप्त नहीं होता।

इस तरह सम्यक्त्वका पाना वहुत कठिन है। इसको पा लेना कुछ लड़कोंका खेल थोड़े ही है।

पुन पचपरावर्तन।

भावपरावर्तन अनंत जो करैं हैं जीव,
एक भावतैं अनंत भवके परावर्त हैं।
एक भौसेती अनंत कालपरावर्त करैं,
कालतैं अनंत खेतपरावर्त कर्त हैं॥
एक खेततैं अनंत पुग्गलपरावर्तन,
पंच फेरीविषै आप मिथ्यावस पर्त्त हैं।
सातकौं विनास जिन्हैं सम्यक प्रकास तेई,
दर्व खेत काल भव भावतैं निकर्त हैं॥७७॥

अर्थ—जीव संसारमे मिथ्यात्वके वशीभूत होकर अनन्त भावपरावर्तन करते हैं और जितने समयमें एक भावपरावर्तन होता है, उतनेमे अनन्त भवपरावर्तन हो जाते हैं। क्योंकि, भाव परावर्तनमे सब प्रकारके कर्म-वंधका कारण आत्मभाव क्रमसे उत्पन्न होकर कर्म बाँधता है· किंतु दूसरे परावर्तनोमें एक एक कर्मके भोगकी ही मुख्यता रहती है अथवा पुद्गलपरावर्तनमें प्रदेशबंध मात्रकी ही मुख्यता रहती है। क्योंकि एक समयमे मिथ्यात्व भावने जितने कर्म बँधते हैं. उनके क्षय कर-नेके लिये अनन्त भवपरावर्तन करना पड़ते हैं और एक भवमें जो कर्म बँधते हैं. उनके दूर करनेको अनन्त

अर्थ—अनादि मिथ्यादृष्टी या सादि मिथ्यादृष्टि जीवको बहुत कालसे एकेन्द्रीमें भ्रमण करते करते, समय पाकर स्थावरसे निकलकर सेनी पंचेन्द्रियत्वकी प्राप्ति होनेको क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। लब्धिशब्दका अर्थ प्राप्ति है। शुभ कर्मके उदयसे दान पूजादि शुभ कार्योंके करनेके लिये उद्यत होनेको विसोही या विशुद्धि लब्धि कहते हैं। सद्गुरुके उपदेशसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनेको देशनालब्धि कहते हैं।

काल पाकर व्रत धारण करके और उपवासादि तपश्चर्या करके अथवा और भी किसी प्रकार आयुकर्मके सिवा शेष सातों कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना सो प्रायोग्य लब्धि है।

ये चारों लब्धियां इस जीवको यद्यपि अनन्त वार हुई होंः परन्तु पांचवीं करणलब्धि जबतक नहीं हुई हो. तबतक इस जीवको सम्यक्त्वका लाभ नहीं होता। क्योंकि करणलब्धिके विना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है. ऐसा नियम है।

करण नाम परिणामों का है। जब मिथ्याती जीव सम्यक्त्वके सम्मुख होता है उस समय उसके परिणाम अधःकरण. अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप होते हैं। जिस करणमें उपरितनसमयवर्ती तथा अधस्तनसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश तथा विसदृश हों उसे अधःकरण कहते हैं। जिसमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व

कालपरावर्तन करना पड़ते हैं। अनन्त संख्याके अनन्त भेद हैं। जितने समयमें एक कालपरावर्तन पूरा होता है, उतनेमें अनन्त क्षेत्रपरावर्तन हो जाते हैं। एक क्षेत्रके बाँधे हुए कर्म दूर करनेको अनन्त पुद्गलपरावर्तन करना पड़ते हैं। इस तरह जीव आप पंच परावर्तनरूप फेरामें अर्थात् चक्करमें पड़ा है—अनन्त बार जन्मता है और अनन्त बार मरता है। जिनके अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंका विनाश हो गया है; अतएव क्षायिक सम्यक्त्वका प्रकाश हो गया है, वे ही जीव इस द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूप पंच परावर्तनोंके चक्करसे निकल पाते हैं।

पांच लब्धियां।

थावरतैं सैनी होय ए ही खय उपसम है,
दान पूजा उद्यत विसोही उपयोग है।
गुरु उपदेस तत्त्वग्यान सो ही देसना है,
अंत कोराकोरी कर्मकी थिति प्रायोग है॥
जगमैं अनंत बार चारि लब्धि पाई इनि,
कर्नलब्धि विना समकितकौ न जोग है।
अधो अपूरव अनिवृत्त कर्न तीन करैं,
मिथ्यामाहिं पीछैं चौथा सम्यक नियोग है ७८

अर्थ—अनादि मिथ्यादृष्टी या सादि मिथ्यादृष्टि जीवको वहुत कालसे एकेन्द्रीमे भ्रमण करते करते, समय पाकर स्थावरसे निकलकर सेनी पंचेन्द्रियत्वकी प्राप्ति होनेको क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। लब्धिशब्दका अर्थ प्राप्ति है। शुभ कर्मके उदयसे दान पूजादि शुभ कार्योंके करनेके लिये उद्यत होनेको विसोही या विशुद्धि लब्धि कहते है। सद्गुरुके उपदेशसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनेको देशनालब्धि कहते है।

काल पाकर व्रत धारण करके और उपवासादि तपश्चर्या करके अथवा और भी किसी प्रकार आयुकर्मके सिवा शेप सातो कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना सो प्रायोग्य लब्धि है।

ये चारों लब्धियां इस जीवको यद्यपि अनन्त वार हुई हों; परन्तु पांचवीं करणलब्धि जवतक नहीं हुई हो, तबतक इस जीवको सम्यक्त्वका लाभ नहीं होता। क्योंकि करणलब्धिके विना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है।

करण नाम परिणामो का है। जव मिथ्याती जीव सम्यक्त्वके सम्मुख होता है, उस समय उसके परिणाम अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप होते है। जिन करणमे उपरितनसमयवर्ती तथा अधस्तनसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश तथा विसदृश हो उसे अधःकरण कहते है। जिसमे उत्तरोत्तर अपूर्व ही अ...

परिणाम होते जावें अर्थात् भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश और विसदृश भी हों, उसको अपूर्वकरण कहते हैं। और जिसमें भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश ही हों, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। ये तीनों प्रकारके परिणाम उत्तरोत्तर अधिक अधिक विशुद्ध होते जाते हैं, इसीलिये इनमें परस्पर भेद माना गया है। इन तीन करणोंके अनन्तर उपशम सम्यक्त्व होता है।

नन्दीश्वर द्वीप।

एकसौ तिरसठ किरोर चवरासी लाख,
जोजनको चौरा दीप बावन पहार है।
दिसा चारि अंजन जोजन चौरासी हजार,
सोलै दधिमुख जोजन दस हजार है॥
रतिकर हैं बत्तीस जोजन हजार एक,
लंबे चौर ऊंचे सब ढोलके अकार है।
सबपर जिनभौन बावन विराजत हैं,
वर्षे तीन बार देव करें जै जैकार है॥ ७३॥

अर्थ—इस पद्यमें आठवें नन्दीश्वर द्वीपकी रचनाका वर्णन है। इस द्वीपकी चौड़ाई १६३८४००००० योजन है। इसके भीतर ५२ पर्वत हैं। चारों दिशाओंमें चार तो

अंजनगिरि नामके पर्वत हैं, जो चौरासी चौरासी हजार ऊंचे लम्बे और चौड़े है तथा आदि मध्य और अन्तमे इकसां हैं। इन अंजनगिरियोके चारों ओर एक एक लाख योजन लम्बी, चौड़ी, गहरी चार चार वावड़ी हैं और उनके भीतर दश दश हजार लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाईके दधिमुख नामके सोलह सफेद पर्वत है। इस तरह चारों अंजनगिरिके १६ दधिमुख हैं। जिन वावड़ियोंमे दधिमुख पर्वत हैं, उनके वाहरी दो दो कोंनोंमें दो दो रतिकर पर्वत हजार हजार योजनके लम्बे, चौड़े, ऊंचे है। सारे रतिकर ३२ हैं। इस तरह ४+१६+३२ मिलाकर ५२ पर्वत हुए। ये सब ढोलके समान गोल है और इन सवके ऊपर एक एक जिनमंदिर है। ऐसे सब मिलानेसे ५२ जिनमंदिर होते है। वहां वर्षमे तीन वार कातिक, फागुन और असाढ़के अन्तिम आठ दिनोंमें देव आते है और पूजा, स्तुति, नृत्य गानादिकरके जयजयकार करते है।

मेरुका वर्णन।

मेर एक लाख जड़ ऊंचा निन्यानू हजार,
चूलिका चालीस वाल अंतर विमान हैं।
नीचैं भद्रसाल वन दिसा चारि जिनभौन,
पांचसैपै नंदन चैताले चारि वान हैं॥
साढ़े वासठ हजार सोमनस वन चारि,
चैताले ऊंचे सहस छत्तिस वखान हैं।

परिणाम होते जाते अर्थात् भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश और विसदृश भी हों, उसको अपूर्वकरण कहते हैं। और जिसमें भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश ही हों, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। ये तीनों प्रकारके परिणाम उत्तरोत्तर अधिक अधिक विशुद्ध होते जाते हैं, इसीलिये इनमें परस्पर भेद माना गया है। इन तीन करणोंके कर चुकनेपर सम्यक्त्व होता है।

नन्दीश्वर द्वीप।

एकसौ तिरेसठ किरोर चवरासी लाख,
जोजनकी चौरा दीप बावन पहार हैं।
दिसा चारि अंजन जोजन चौरासी हजार,
सोलै दधिमुख जोजन दस हजार हैं॥
रतिकर हैं बत्तीस जोजन हजार एक,
लंबे चौरे ऊंचे सब ढोलके अकार हैं।
सबपर जिनभौन बावन विराजत हैं,
वर्ष तीन बार देव करें जै जैकार हैं॥ ७२॥

अर्थ—इस पद्यमें आठवें नन्दीश्वर द्वीपकी रचनाका वर्णन है। इस द्वीपकी चौड़ाई १६३८४००००० योजन है। इसके भीतर ५२ पर्वत हैं। चारों दिशाओंमें चार तो

अंजनगिरि नामके पर्वत हैं, जो चौरासी चौरासी हजार ऊंचे लम्बे और चौड़े है तथा आदि मध्य और अन्तमे इकसां हैं। इन अंजनगिरियोंके चारो ओर एक एक लाख योजन लम्बी, चौड़ी, गहरी चार चार बावड़ी हैं और उनके भीतर दश दश हजार लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाईके दधिमुख नामके सोलह सफेद पर्वत है। इस तरह चारों अंजनगिरिके १६ दधिमुख है। जिन बावड़ियोंमे दधिमुख पर्वत है, उनके बाहरी दो दो कोंनोंमें दो दो रतिकर पर्वत हजार हजार योजनके लम्बे, चौड़े, ऊंचे है। सारे रतिकर ३२ हैं। इस तरह ४+१६+३२ मिलाकर ५२ पर्वत हुए। ये सब ढोलके समान गोल है और इन सबके ऊपर एक एक जिनमंदिर है। ऐसे सब मिलानेसे ५२ जिनमंदिर होते हैं। वहां वर्षमे तीन बार कातिक, फागुन और असाढ़के अन्तिम आठ दिनोंमें देव आते हैं और पूजा, स्तुति, नृत्य गानादिकरके जयजयकार करते है।

मेरुका वर्णन।

मेर एक लाख जड़ ऊंचा निन्यानू हजार,
चूलिका चालीस वाल अंतर विमान हैं।
नीचैं भद्रसाल वन दिसा चारि जिनभौन,
पांचसैपै नंदन चैताले चारि वान हैं॥
साढ़े बासठ हजार सोमनस वन चारि,
चैताले ऊंचे सहस छत्तिस वखान हैं।

नौ हजार नौसै चौवन भाग कहे तहां,
सौमनस व्यालीससै बहत्तर रहा है ॥
पांडुक हजार एक बीच बारै चूलिका है,
चौसै चौरानूं वन पांडुक सरदहा है।
सौमनस नंदन है पांचसैके भद्रसाल,
बाईस हजार पुव्व पच्छिममैं कहा है ॥८१॥

अर्थ—मेरु पर्वतका विस्तार गोल है। चित्रा पृथ्वीके नीचे मेरुकी जड़ दश हजार और नव्वे (१००९०) योजनकी चाड़ी है। और ऊपर जहां भद्रशालवन है वहां उसकी चौड़ाई दश हजार योजनकी है। इस तरह जड़के नीचेसे चित्रा पृथ्वीतक मेरुकी चौड़ाई क्रमसे कम होती होती ९० योजन कम हो गई है। भद्रशालवनसे ५०० योजनकी ऊंचाईपर नन्दन वन है, वहां मेरु*९९५४ योजन और कुछ भाग (६/११) अधिक चौड़ा है अर्थात् वहां उसकी चौड़ाई कुछ कम ४६ योजन घटी है। नन्दन वनसे ६२५०० योजनकी ऊंचाईपर सौमनस वन है। इस ऊंचाईमेंसे प्रारंभकी दश हजार योजनकी ऊंचाई तक तो मेरुकी चौड़ाई एकसी है—घटी नहीं है; परन्तु आगे ५२५०० योजनमें वह क्रमसे घटी है और सौमनस

---

* इसमें दोनों नन्दनवनोंकी पांच पांच सौ योजनकी चौड़ाई भी शामिल है। मेरुकी चौड़ाई यहांपर ८९५४ योजन है।

तहां वन पाडक चैताले चारि सव सोलै,
मनवचकायसेती वंदौं पाप हान हैं ॥ ८० ॥

अर्थ—सुमेरु पर्वतकी ऊंचाई एक लाख योजनकी है, जिसमेंसे जड़से अर्थात् भूमिके ऊपरी भागपरसे ऊपर (भद्रशालवनसे पांडुकवनतक) ९९ हजार योजन ऊंचा है। रहे एक हजार योजन, सो इतनी उसकी जड़ है। यह जड़ चित्रा पृथिवीसे नीचे है। पांडुक वनसे ऊपर चालीस योजन ऊंची चूलिका है, जिसके ऊपरके भागका सौधर्म स्वर्गके ऋजु विमानसे केवल एक वालके वरावर अन्तर है। नीचे अर्थात् मेरुकी चौगिर्द भूमिपर या चित्रा पृथ्वीके ऊपर भद्रशाल नामका वन है, जिसपर मेरुकी चारों दिशाओंमें चार जिनमंदिर हैं। इस भद्रशालसे पांचसौ योजनकी ऊंचाईपर मेरुकी चारों दिशाओंमें ४ नन्दन वन हैं और उनमें ४ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। नन्दनवनोंसे ६२½ हजार योजन की ऊंचाईपर ४ सौमनस नामके वन है और उनमें भी ४ चैत्यालय हैं। इससे आगे ३६ हजार योजनकी ऊंचाईपर ४ पांडुक नामके वन हैं और उनमें भी ४ जिनचैत्यालय हैं। इसतरह उक्त चार नामके सोलह वनोंमें जो १६ चैत्यालय है, वे पापके नाश करनेवाले हैं। उनकी मैं मनवचनकायपूर्वक वन्दना करता हूं।

मेरुपर्वतका पूर्वपश्चिमविस्तार।

मेरु गोल जड़तलैं दस हजार नव्वैकौ,
भूममैं हजार दस नंदनपै लहा है।

नौ हजार नौसै चौवन भाग कहे तहां,
सौमनस व्यालीससै वहत्तर रहा है ॥
पांडुक हजार एक बीच बारै चूलिका है,
चौसै चौरानूं वन पांडुक सरदहा है।
सौमनस नंदन है पांचसैके भद्रसाल,
वाईस हजार पुव्व पच्छिममैं कहा है ॥८१॥

अर्थ—मेरु पर्वतका विस्तार गोल है। चित्रा पृथ्वीके नीचे मेरुकी जड़ दश हजार और नव्वे (१००९०) योजनकी चाड़ी है। और ऊपर जहां भद्रशालवन है वहां उसकी चौड़ाई दश हजार योजनकी है। इस तरह जड़के नीचेसे चित्रा पृथ्वीतक मेरुकी चौड़ाई क्रमसे कम होती होती ९० योजन कम हो गई है। भद्रशालवनसे ५०० योजनकी ऊंचाईपर नन्दन वन है, वहां मेरु*९९५४ योजन और कुछ भाग ($\frac{६}{११}$) अधिक चौड़ा है अर्थात् वहां उसकी चौड़ाई कुछ कम ४६ योजन घटी है। नन्दन वनसे ६२५०० योजनकी ऊंचाईपर सौमनस वन है। इस ऊंचाईमेंसे प्रारंभकी दश हजार योजनकी ऊंचाई तक तो मेरुकी चौड़ाई एकसी है—घटी नही है; परन्तु आगे ५२५०० योजनमे वह क्रमसे घटी है और सौमनस

* इसमे दोनों नन्दनवनोंकी पाच पाच सौ योजनकी चौडाई भी शामिल है। मेरुकी चौडाई यहापर ८९५४ योजन है।

वनपर †४२७२ योजनकी मोटाई रह गई है। अर्थात् उतनी ऊंचाईमें ५६८२ योजनसे कुछ अधिक घट गई है। इसके ऊपर ३६ हजार योजनकी ऊंचाईपर पांडुक वन है। इस ३६ हजारमेंसे ११ हजार योजनकी ऊंचाई तक मेरु पर्वतकी चौड़ाई एकसी है अर्थात् वहांतक ३२७२ योजनकी ही मोटाई चली गई है। आगे वह घटी है और घटते घटते पांडुक वनके पास १ हजार योजनकी रह गई है। जिसके वीचमें चूलिकाकी चौडाई १२ योजन है और शेषमें दोनों ओर चारसौ चौरानवे चौरानवे योजनके पांडुक वन हैं। (४९४+४९४+१२=१०००)

सौमनस और नन्दनवन पांच पांच सौ योजनके चौड़े हैं और भद्रशाल वन पूर्व पश्चिम वाईस वाईस हजार योजनके हैं।

चौदह गुणस्थानोंमें मरकर जीव कहां कहां जाता है।

छप्पय।

मिस्र खीन संजोग, तीनमैं मरन न पावै।
सात आठ नव दसम, ग्यार मरि चौथे आवै॥
प्रथम चहूगति जाय, दुतिय विन नरक तीन गति।
चौथे पूरव आव, वंधतैं चहुगति प्रापति॥

---

† इसमें भी दोनों सौमनसवनोंकी चौड़ाई हजार योजन शामिल है।

पंचमतैं ग्यारम सात गुन, मरै सुरगमैं औतरै।
वंदौं इक चौदस थान तजि, अजर अमर सिवपद वरै ॥ ८२॥

अर्थ—तीसरे मिश्रगुणस्थानमें, बारहवें क्षीण कषायमे और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थानमे जीव मरण नहीं पाता है, यह नियम है। सातवे, आठवे, नववें, दशवे और ग्यारहवें गुणस्थानमे यदि जीव मरण करता है, तो उस समय मरणसे पहले ही ऊपरसे गिरकर एक वार तो चौथे गुणस्थानमे आता है। अर्थात् अन्त समय अव्रतरूप कार्माण शरीर धारण करता है और फिर देवगतिको प्राप्त होता है।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमे मरा हुआ जीव चारों गतियोंमे जाता है; परन्तु देवगतिमे नवग्रैवेयिक तक ही जाता है। दूसरे गुणस्थानमे मरकर नरकको छोड़कर शेष तीन गतियोंमे अर्थात् तिर्यंच मनुष्य और देवगतिमे जाता है। चौथे गुणस्थानमे मरण करके जीव, पूर्वमे

१ इसमें इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पहले यदि नरकायुका बन्ध हो चुका है और फिर यदि सम्यक्त्व उत्पन्न हो तथा सम्यक्त्वसहित ही मरण हो, तो पहले नरकतक ही जाता है—आगेके नरकोंमे नही जाता है और क्षायिक सम्यक्ती पहले नरकमे ही जाता है। इसके सिवाय यदि पहले तिर्यंचगतिका बंध किया हो, और पीछे सम्यक्त्व ग्रहण करके मरे तो भोगभूमिया तिर्यंच होवे। तथा मिथ्यात्व गुणस्थानमे देवगतिका बन्ध किया हो, पीछे सम्यक्त्व ग्रहण कर मरे, तो स्वर्गमे ही उपजे—पातालवासी, ज्योतिषी, और व्यन्तरोंमे उत्पन्न न होवे। यदि सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पहले किसी आयुका बंध न किया हो, तो वह मरकर बड़ा देव हो—अन्यगतिमे न जाय और सोभी बड़ी ऋद्धिका धारक हो।

१५ शोक, १६ भय, १७ जुगुप्सा, १८ स्त्रीवेद, १९ पुरुष-वेद, २० नपुंसकवेदः २१ एकेन्द्रियः विकलत्रय अर्थात् २२ दोइंद्रिय, २३ तेइंद्रिय, २४ चौंइंद्रीः २५ स्थावर. २६ आतप. २७ उद्योत, २८ सूक्ष्म, २९ साधारणः तीनों निद्रा अर्थात् ३० निद्रानिद्रा, ३१ प्रचलाप्रचला, ३२ स्त्यानगृद्धि. ३३ नरकगति, ३४ पशुगति. ३५ नरकगत्यानुपूर्वी और ३६ तिर्यचगत्यानुपूर्वी इन ३६ प्रकृतियोंका नवमे गुणस्थानमे क्षपकश्रेणीवाला मुनि सत्तामे नाश करता है।

जिनवाणीकी संख्या।

सोलह सै चौंतीस किरोर लाख तेरासिय.
अठत्तरसै अठासी अच्छर ए लेखिए।
इक्यावन कोर आठ लाख सहस चौरासी.
छसै साढ़े इकईस ए सिलोक पेखिए॥
ताकौ पद इक और इकसौ और किरोर.
तेरासी लाख सहस अट्ठावन देखिए।
पंच पद एते सब द्वादसांग जिनवानी.
वंदै मन लाय भेदग्यानकौं विसेखिए॥८४॥

अर्थ—इन पदमें द्वादशांगरूप जिनवाणीके अक्षरों श्लोकों और पदोंकी गिनती बतलाई है। केवली भगवानके द्वारा जो वाणी खिरी थी और गणधरदेवने जिन्हे

धारण करके गूंथी थी, उसीको जिनवाणी कहते हैं। उसमें १६३४८३०७८८८ अक्षर हैं। ५१०८८४६२१[1] श्लोक हैं और उसके पद एकत्र किये जावें, तो वे ११२८३५८००५ होते हैं। इन सब पदोंकी समूहरूप जिनवाणीकी जी लगाकर वन्दना करनेसे भेदज्ञानकी वृद्धि होती है।

चौदह गुणस्थानोंमें कर्मोंका आस्रव।

पहलैं पांचौं मिथ्यात दूजैं अनंतानुबंधी,
ग्यारे अविरत प्रत्याख्यानी पांचैं गहे।
वैक्रियक औ अप्रत्याख्यानी त्रसवध चौथैं,
आहारक छट्ठें षट हास्य आठलौं लहे॥
तीनि वेद तीनि संजुलन नवैं लोभ दसैं,
असत उभै वचन मन बारहें कहे।
सत अनुभय वच मन औदारिक तेरैं,
मिस्र कारमान चारगुनथानैं सरदहे॥ ८५॥

अर्थ—पहिले गुणस्थानमें एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान इन पांच मिथ्यात्वोंसे आस्रव होता है—आगे इनका आस्रव नहीं होता। दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभसे आस्रव होता

---

१ उक्तं च—कोटी शतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिर्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि॥

है। पाचवें गुणस्थानमे ग्यारह अविरतोंसे (पांच इंद्रिय छट्ठे मनकी स्वच्छन्दता और पांच थावरोंकी विराधनासे) और प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ इन चारसे; इस तरह पन्द्रहोंसे आस्रव होता है। चौथे गुणस्थानमे वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ, और त्रसवध इन सातोंसे; छट्ठे गुणस्थानमे आहारक और आहारक मिश्र इन दोसे; आठवेमें हास्यादि छहसे अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सासे; नववेमे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये तीन वेद और संज्वलन क्रोध मान माया ये तीन संज्वलन कषाय इस तरह छहसे: दशवेमे सूक्ष्मलोभसे, बारहवेमे असत् वचन, उभय वचन, असत् मन, उभय मन इन चार योगोंसे और तेरहवेमे सत् वचन, अनुभय वचन, सत् मन, अनुभय मन ये चार मनवचनयोग और औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्माण इन सातोंसे आस्रव होता है।

मिश्र योग और कार्माण योगकी व्युच्छित्ति चार गुणस्थानोमे अर्थात् पहले, दूसरे, चौथे और तेरहवे गुणस्थानोमे होती है।

चौदह गुणस्थानोमें चारो आयुओका बंध और उदय।

नरक आव पहलैं बंधै उदय चौथे लौं,
पसू आव दूजैं बंध उदै पांचमैं कही।
नर आव चौथे लग बंध उदै चौदहलौं;
सुर आव सातैं बंध उदै चारिमैं लही॥

नर्क सुर्ग आठमैं निगोद नाहिं गाइए।
सूच्छम नरक तेज वायमैं न सासादन,
भौनत्रिक पसुमैं न तीर्थंकर पाइए ॥
सव ही सूच्छम अंग कहे हैं कपोत रंग,
कारमान देहकौ सुपेद रूप भाइए।
विपुल मनपर्जै औ पर्म औधि सर्व औधि,
ठीक लहैं मोख तातैं इन्हैं सीस नाइए ॥८७॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय केवली भगवानका परमौदारिक शरीर, छटे गुणस्थान-वर्ती मुनिके प्रगट हुआ आहारक शरीर, नारकी जीवोंके शरीर और देवोंके शरीर इन आठ स्थानोंमें, निगोद जीव नहीं होते हैं। सूक्ष्म जीवोंमें अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, नित्यनिगोद और इतर निगोदके जीवोंमें, सातों नरकोंके जीवोंमें, अग्निकायके सूक्ष्म बादर जीवोंमें और पवन-कायके सूक्ष्म बादर जीवोंमें—इस तरह इन चार स्थानोंके जीवोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता है। अर्थात् जीव सासादन गुणस्थानके परिणामोंके साथ मरकर सासादन परिणामोंको वहांतक नहीं ले जासकता है। भवन-त्रिक अर्थात् पातालवासी देव व्यन्तर देव और ज्योतिषी देव तथा भोगभूमिया और कर्मभूमिया पशु इनमें तीर्थंकरकी सत्ता सहित जीव नहीं जाता है। अर्थात् तीर्थङ्कर नामकर्मका बंध जिनको हुआ है वह जी,

मनुष्य होकर, महाव्रत धारण करके मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है पर तीर्थंकर नहीं हो सकता। तीसरे, दूसरे और पहले नरकसे निकलकर अचिन्त्य विभूतिका धारक तीर्थंकर भी हो सकता है। भवनत्रिक देव (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी) और सौधर्म, ईशान स्वर्गोंके देव मरकर एकेंद्री पर्यायमें भी जन्म ले सकते हैं; परन्तु एकेंद्रीमें अग्निकाय, वायुकायके जीव नहीं हो सकते हैं—बादर पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय हो सकते हैं। तीसरे सनत्कुमार स्वर्गसे बारहवें सहस्रार स्वर्गतकके देव पंचेंद्री पशु हो सकते हैं—एकेंद्रियादि नहीं हो सकते और बारहवें स्वर्गसे ऊपरके देव एक मनुष्यशरीरमें ही अवतार लेते हैं—अन्य गतियोंमें नहीं जाते। स्वर्गोंके आठ युगल हैं और उनमें बारह इंद्र हैं। इन बारह इंद्रोंमें छह उत्तरके हैं और छह दक्षिणके हैं। दक्षिणके छह इंद्र सुधर्म स्वर्गकी इंद्राणी सौधर्म स्वर्गके चारों लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके सब अहमिन्द्र ये मोक्षको प्राप्त होते हैं—केवल एक ही भव धारण करके मुक्त हो जाते हैं इसलिये इन सबको मेरा नमस्कार है।

कषायोंके दृष्टान्त और उनके फल।

पाहनकी रेख, थंभ पाथरको, बांसजड़ा।

कृमिरंग सम, चारों नरकमाहिं ले धरें ।
हलरीक हाड़थंभ मेषसींग गाड़ीमल,
क्रोध मान माया लोभ तिरजंचमें दे ॥
धूलीक काठथंभ गोमूत्र देहमैलके,
कषाय भये जीव मानुषमें आवें ।
जलरेखा बेतदंड खुरपा हल्दरंग,
द्यानत ए चारि भाव सुरगतिकों करै ॥८॥

अर्थ—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंके परिणामोंकी तीव्रता मन्दताके अनुसार १६ भेद होते हैं। उन सबके क्रमसे दृष्टान्त तथा फल कहते हैं:—अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थरकी लकीरके समान अनन्त काल तक ठहरता है—बहुत ही कठिनाईसे नष्ट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाणके खंभके समान अनन्त काल तक सीधा ज्योंका त्यों बना रहता है—सहज ही नहीं नमता है। अनन्तानुबन्धी माया बांसके बिड़ेके समान बहुत ही टेढ़ी मेढ़ी रहती है—और अनन्तानुबंधी लोभ कृमिरंग अर्थात् लाखके रंगके समान बहुत ही पक्का होता है—अनन्तकालतक बना रहता है—शीघ्र नहीं धुलता। ये चारों कषाय सम्यक्त्वको नहीं होने देते हैं और जीवको नरक गतिमें ले जाते हैं। अप्रत्याख्यानी क्रोध खेत जोतनेसे जैसी हलकी लकीर बन जाती है, उसके

समान छह महीना तक रहता है । अप्रत्याख्यानी मान हड्डीके स्तंभके समान है—नव सकता है; परन्तु मुश्किलसे। अप्रत्याख्यानी माया जिसतरह मेढ़ेके सींग साधारण टेढ़े और लड़नेमें घिसघिसकर कम होते हैं उसी तरह टेढी और धीरे धीरे कम होती है। अप्रत्याख्यानी लोभ गाड़ीके ओंगनके रंग समान है—कठिनाईसे छूट सकता है। ये चार कषाय सम्यक्त्वका घात तो नहीं करते हैं; परन्तु व्रत अणुमात्र भी ग्रहण नहीं करने देते हैं और जीवको तिर्यंच गतिमें ले जाते है। प्रत्याख्यानी क्रोध गाड़ीके चकेकी लकीरके समान होता है—अधिक समय तक नहीं ठहरता है। प्रत्याख्यानी मान लकड़ीके स्तंभके समान होता है—प्रयत्न करनेसे नव सकता है। प्रत्याख्यानी माया गोमूत्रके समान कम टिढ़ाई लिये होती है। प्रत्याख्यानी लोभ शरीरके ऊपर जो मैल लग जाता है. उसके समान होता है—शीघ्र छूट जाता है। ये चारों कषाय महाव्रत धारण नही करने देते है और इन कषायोंसे भरे हुए जीव प्रायः मनुष्य गतिमें जन्म पाते हैं। ये प्रत्याख्यानी कषाय एक वारके उत्पन्न हुए अधिकसे अधिक १५ दिनतक रहते है। संज्वलन क्रोध पानीकी लकीरके समान है—तत्काल ही नष्ट हो जाता है। संज्वलन मान वेतकी छड़ीके समान है. जो थोड़ेसे प्रयत्नसे ही लच जाती है। संज्वलन माया खुरपाके समान है—उसमें थोड़ीसी ही टिढ़ाई रहती है और संज्वलन लोभ हलदीके रंग समान है—बहुत सुगमतासे मिट जाता है। ग्रन्थकर्त्ता द्यानतराय कहते हैं कि

ये चार कषायभाव स्वर्गादिके करनेवाले हैं; परन्तु इनके होते हुए यथाख्यात चारित्र नहीं हो सकता है।

चौदह गुणस्थानोंमें चौंतिस भाव।

पहलैं मिथ्या अभव्व दूसरें विभंग तीनि,
लेस्या तीनि अव्रत नरक देव चारमें।
पसु पांचें लेस्या दोय सातें लोभ दसें लग,
क्रोध मान माया तीनि वेद नौ विचारमें॥
सेत तेरें नर भव्व जीवत असिद्ध चौदें,
पंचलब्ध अग्यान चक्ष अचक्ष बारमें।
चौतीसौं भाव कहे चौदह गुनथानकमें,
वे (?) उनीस बारहमें मैं हौं अविकारमें॥१०॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्व गुणस्थानतक मिथ्यात्व भाव और अभव्य भाव ये दो भाव, दूसरे गुणस्थान तक कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये तीन विभंग भाव (क्षायोपशमिक), चौथे गुणस्थान तक कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्या तथा अव्रत (असंयम) नरकगति और देवगति इस प्रकार छह भाव, पांचवें गुणस्थानतक पशु अर्थात् तिर्यंचगति यह एक, सातवें तक पीतलेश्या और पद्मलेश्या ये दो भाव, नववें तक क्रोध मान माया और पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ये तीन वेद इस तरह छह

भाव, दशवे तक सूक्ष्म लोभ यह एक, वारहवे तक पांच लब्धि यां (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य), अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये आठ भाव, तेरहवें तक शुक्ल लेश्या यह एक और चौदहवे तक मनुष्यगति, भव्यत्व, जीवत्व और असिद्धत्व ये चार भाव होते है। इस तरह ये ३४ भाव क्रमसे चौदह गुणस्थानोंमे वतलाये अर्थात् यह वतलाया कि किन किन गुणस्थानोंमे किन किन भावोंकी व्युच्छित्ति होती है? जिस गुणस्थानमे जिस भावकी व्युच्छित्ति कही हो, उस गुणस्थानसे ऊपर वह भाव नहीं रह सकता। इस लिये यहांपर जिस गुणस्थान तक जो भाव कहा हो वह भाव उससे पूर्वके गुणस्थानोंमे तो यथासंभव मिल सकता है; परंतु उसके ऊपरके गुणस्थानमे वह भाव सर्वथा नही रह सकता। इनके सिवा १९ भाव वारह गुणस्थानोंमे वतलाये है । (देखो आगेका सवैया) मैं इन सव भावोंसे जुदा विकाररहित हूं। क्योंकि, कर्मरूप परवस्तुके योगसे ये सव विकार उपजते है। शुद्ध आत्मामे इन भावोंकी कल्पना नही है।

वारह गुणस्थानोमे उन्नीस भाव ।

उपसम चौथैं ग्यारैं वेदक है चौथैं सातैं,
छायक है चौथैं चौदैं, देशव्रत पांचमैं ।
ग्यान तीनि तीजैं वारैं, मनपर्जै छट्टैं वारैं,
चारित सराग छट्टैं दसैं कह्यौ सांचमैं ॥

होते हैं। इनके कहनेमें व्युच्छित्ति होनेका या दिखा-
नेका वक्ताका अभिप्राय नही है।

पहले जो ३४ भाव कहे हैं उनमे कुछकी उत्पत्ति तो
कर्मोदयसे, कुछकी क्षयोपशमादिसे तथा कुछकी स्वाभाविक
होती है अर्थात् उनमें कर्मकी क्षयोपशमादि किसी अवस्था
विशेषकी आवश्यकता नहीं पड़ती और उनका वर्णन
ऊपर ऊपरके गुणस्थानोंमे उनकी व्युच्छित्ति दिखानेके
लिये किया गया है। दोनों जगह इन भावोंके जुदा जुदा
कहनेका यही प्रयोजन है।

चौदह गुणस्थानोमें त्रेपन भाव।

कवित्त (३१ मात्रा।)

चौतिस बत्तिस तेतिस छत्तिस,
इकतिस इकतिस इकतिस मान।
अट्ठाइस अट्ठाइस बाइस,
बाइस बीस बारमैं थान॥
चौथै तेरै अंतिम थानक,
पंच भाव सिद्धाले जान।
सम्यक ग्यान दरस बल जीवत,
निहचैसौं तू आप पिछान॥ ९२॥

अर्थ—जीवोंके जो ५३ भाव हैं. वे चौदह गुणस्था-
नोंमें क्रमसे इस प्रकार होते हैं.—पहले गुणस्थानमें ३४.
दूसरेमें ३२. तीसरेमे ३३. चौथेमे ३६. पाचवेंमें ३१. छट्टेमें

३१, सातवेंमें ३१, आठवेंमें २८, नववेंमें २८, दशवेंमें २२, ग्यारहवेंमें २२, वारहवेंमें २०, तेरहवेंमें १४ और चौदहवेंमें १३। सिद्धालयमें पांच भाव होते हैं–सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वल और जीवत्व। हे आत्मन्, निश्चयसे तू आपको सिद्धके समान समझ।

अव यहां यह वतलाया जाता है कि त्रेपन भाव कौन कौन हैं:—भावोंके मूलभेद ५ हैं–औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक। औपशमिकके दो भेद हैं–उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र। क्षायिकके नव भेद हैं–क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। क्षायोपशमिक या मिश्रके १८ भेद हैं–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य (क्षायोपशमिक लब्धि), क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, और संयमासंयम। औदयिकके २१ भेद हैं:–४ गति, ४ कपाय, ३ लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व और ६ लेश्या। पारिणामिकके तीन भेद हैं–जीवत्व, भव्यत्व, और अभव्यत्व।

चारो गतियोंमें आस्रवद्वार।

सवैया इकतीसा।

वैक्रियक दोय विना नर पचपन द्वार,
आहारक दोय विना त्रेपन तिर्जच है।

औदारिक दोय दोय आहारक पंढवेद,
पांच विना देवनिकै बावनकौ संच है ॥
आहारक दोय दोय औदारिक नारि नर,
छहौं विना इक्यावन नर्कमैं प्रपंच है ।
चारौं गतिमाहिं ऐसैं आस्रव सरूप जान-
नमौं सिद्ध भगवान जहां नाहिं रंच है ॥९३॥

अर्थ—मनुष्यगतिमे वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र इन दोको छोड़कर शेष ५५ आस्रवद्वार सामान्यतासे है। तिर्यचगतिमे आहारक और आहारक मिश्र इन दोको (५५ मेसे) छोड़कर ५३ आस्रवद्वार है। देवगतिमें औदरिक, औदारिक मिश्र. आहारक मिश्र. और नपुसकवेद इन पांचको छोड़कर (५७ मेसे) ५२ आस्रवद्वार है। नरक गतिमे आहारक आहारकमिश्र. औदारिक. औदारिक मिश्र. स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहको छोड़कर ५१ आस्रवद्वार है। इस तरह चारो गतियोमे आस्रव द्वारोंका स्वरूप जानना चाहिये। उन सिद्धभगवानको नमस्कार है जिनके कर्मोंका आस्रव रंच मात्र भी नही होता है।

चारो गतियोमे त्रेपन भाव ।

सासतौ सुभाव पंचभाव सिद्ध वंदत हौं.
तीनौं गति विना नरकै पचास दीस हैं ।
छायकके आठ समकित विना मनपर्ज.
चारित दो ग्यारे विन पसु उन्तालीस हैं ॥

सुभलेस्या तीनि नरनारिवेद देसव्रत
एते छहों भाव बिना नारक तेतीस हैं।
हीन तीन लेस्या षंढवेद चारि भाव नाहिं
सुभलेस्या नरनारि सुरके चौतीस हैं ॥२४॥

अर्थ—क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकसम्यक्त्व, अनन्तवीर्य और जीवत्व ये पांच भाव सिद्ध भगवानके शाश्वत स्वभाव हैं। अर्थात् उनके ये पांच भाव सदा अविनाशी हैं। ऐसे सिद्धोंको मैं वन्दना करता हूं। नरकगति, तिर्यंचगति, और देवगति इन तीन औदयिक भावोंके बिना बाकी ५० भाव मनुष्यगतिमें सामान्यसे हैं। क्षायिकभाव ९ हैं, उनमेंसे सम्यक्त्वको छोड़कर ८ भाव, मनःपर्ययज्ञान, और दो चारित्र अर्थात् उपशम चारित्र और क्षायोपशमिक चारित्र इस तरह ११ भावोंको छोड़कर (जिनमेंसे नरक, देव और मनुष्य इन तीनके छोड़नेसे बाकी रहे जो ५० भाव उनमेंसे) बाकी ३९ भाव तिर्यंचगतिमें होते हैं। पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन शुभलेश्या, और पुरुषवेद, स्त्रीवेद, देशव्रत इस तरह छहों भावोंको छोड़कर (३९ मेंसे) बाकी ३३ भाव नरकगतिमें

---

(१) [illegible]

होते हैं। कृष्ण, नील, कापोत ये तीन हीन लेश्या अर्थात् अशुभलेश्या और नपुंसकवेद ये चार भाव (३३मेंसे) देवगतिमें नहीं होते हैं और पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या (शुभलेश्या). पुरुषवेद, स्त्रीवेद ये पांच विशेष होते हैं। इस तरह ३३–४+५=३४ भाव देवगतिमें सामान्यतासे हैं।

छहों लेश्यावालोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें कौन कौन कर्मोंका बन्ध होता है?

विकलत्रै सूच्छम साधारन अपर्जापत
नरकगति आनुपूर्वी नरक आव है।
मिथ्यामाहिं लेस्या तीनि बांधै इकसौ सतरै,
नव विना पीतकै अठोत्तरसौ भाव है॥
एकेंद्री थावर औ आतप इन तीनि विना
पदम एकसौ पांच बंधकौ उपाव है।
परगति आव आनुपूरवी उदोत चारि
विना सुकल सौ एक बांधै पुन चाव है॥९५॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें कृष्ण नील और कापोत इन तीन लेश्यावाले जीव ११७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं (देखो ८० वे पद्यकी टीका)। इनमेंसे विकलत्रय (दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय) सूक्ष्म साधारण अपर्याप्त नरक गति नरकगत्यानुपूर्वी और नरक आयु इन ९ प्रकृतियोंको छोड़कर बाकी १०८ प्रकृतियोंका बन्ध

पीत लेश्यावाले करते हैं। एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप इन तीनको छोड़कर (१०८ मेंसे) १०५ प्रकृतियोंका बंध पद्मलेश्यावाले जीव करते हैं और तिर्यंच गति, तिर्यंच आयु, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, और उद्योत इन चारके छोड़कर (१०५ मेंसे) १०१ प्रकृतियोंका बंध शुक्ललेश्यावाले जीव करते हैं।

साधारणतः मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है; परन्तु लेश्याके सम्बन्धसे यह विशेष होती है। अर्थात् पीतपद्मशुक्ललेश्यावाले जीवोंके ११७ से कम प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

चौरासी लक्ष योनियां।

सात लाख पृथ्वीकाय सात लाख अपकाय,
सात लाख तेजकाय सात लाख वात है।
सात लाख नित्य औ इतर सात साधारन,
दस लाख परतेक तरुकी गनात है॥
वे ते चव इंद्री दो दो मानुष चौदह लाख,
नर्क स्वर्ग पशु चारि चारि लाख जात है।
चवरासी लाख जात सो ऊपर छिमा करौ,
हमहूनें छिमा करी वैर किए वात है॥६६॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्य निगोद और इतर निगोद (साधारण) जीवोंके

सात सात लाख प्रकारकी जातियां या योनियां हैं। तथा प्रत्येक वनस्पति जीवोंकी दश लाख जातिया हैं। इस तरह एकेन्द्री जीवोंकी ५२ लाख जातियां हैं। दोइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय जीवोंकी दो दो लाख, मनुष्योंकी चौदह लाख, और नारकियों, देवों तथा पशुओंकी चार चार लाख जातियां हैं। इस तरह सब ५२+६+१४+१२=८४ लाख जातिके जीव मुझपर क्षमा करे। मैं भी उनपर क्षमा भाव रखता हूं। क्योंकि क्षमाका विरुद्ध भाव जो वैर है, उसके करनेसे घात होता है-भव भवमे दुःख सहना पड़ते है।

वे त्रेसठ कर्मप्रकृतिया कि जिनका नाश होनेपर केवलज्ञान होता है।

नर्क पसू गति आनुपूरवी प्रकृति चारि,
पंचेंद्रिय विना चारि आतप उदोत हैं।
साधारन सूच्छम औ थावर प्रकृति तेरै,
नर आव विना तीनि मिलि सोलै होत हैं॥
सैंतालीस घातियाकी त्रेसठि प्रकृति सब,
नासि भए तीर्थंकर ग्यानमई जोत हैं।
देवनके देव अरहंत हैं परम पूजि,
तिनहीकौ विंव पूजि होहिं ऊंच गोत हैं ९७

अर्थ—१ नरक गति. २ तिर्यंच गति, ३ नरकगत्यानुपूर्वी, ४ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी. पंचेन्द्रियको छोड़कर शेप चार इंद्रियां अर्थात् ५ एकेन्द्री, ६ दोइंद्रिय, ७ तेइंद्रिय. ८ चौइंद्रियः ९ आतप. १० उद्योत, ११ साधारण. १२ सूक्ष्म और १३ स्थावर

३ आहारक. ४ आहारक अंगोपांग, ५ नरक गति, ६ देव गति, ७ नरकगत्यानुपूर्वी, ८ देवगत्यानुपूर्वी, ९ नरक आयु, १० देवायु, ये दश और १ दो इंद्री, २ ते इंद्री, ३ चौ इंद्रिय, ४ सूक्ष्म, ५ साधारण, ६ अपर्याप्त ये छह इस तरह १६ प्रकृतियोंको छोड़कर शेष १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। नरकगतिमें एकेंद्री स्थावर और आताप इन तीनको छोड़कर (१०४ मेंसे) बाकी १०१ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। तिर्यंच गतिमें तीर्थंकर और दोनों आहारक (आहारक. आहारक अंगोपांग) इन तीनको छोड़कर (१२० मेंसे) ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है और मनुष्य गतिमें सामान्यतः एकसौ वीसो प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इन सब प्रकृतियोंका नाश करनेसे जीव शिवथानी अर्थात सिद्ध भगवान हो जाते हैं।

समस्त जीवोंकी उत्कृष्ट आयु।

मृदु भूमि बारै खर भू बाईस जल सात.
वात तीनि तरु कायकी दस हजार हैं।
पंखीकी बहत्तरि सहस वियालीस सांप.
आगि दिन तीनि दोइंद्री बरस बार हैं॥
तेइंद्री दिन उनचास चवइंद्री छैमास.
सरीसृप पूरवांग नव आठ धार हैं।
मच्छ और पूरव मनुष्य पल तीनि वार.
नारक तेतीस देव सागरकी सार हैं॥[illegible]॥

अर्थ—मृदुपृथिवीकायिक [illegible]

जिनवाणीके सात भंग।

दर्व खेत काल भाव अपने चतुष्टे अस्त,
परके चतुष्टैसें न नासत दरव हैं ॥
आपसें है परसें न एक समै अस्तनास,
ज्योंके त्यों न कहे जाहिं अस्त अवतव हैं ॥
अस्त कहैं नासका अभाव अस्त अवतव,
नास्त कहैं अस्त नाहिं नास अवतव हैं।
एकठे कहे न जाहिं अस्तनासअवतव,
स्यादवादसेती सात भंग सधैं सव हैं ॥१०१॥

अर्थ—प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुष्टयसे अस्तिरूप है, इसलिये उसे स्यात् (कथंचित्) अस्तिरूप कहते हैं और वही पदार्थ परके द्रव्यक्षेत्रकाल भावरूप चतुष्टयसे 'नहीं' है, इसलिये उसे स्यात् नास्तिरूप कहते हैं। आपके चतुष्टयसे वह है और परके चतुष्टयसे नहीं है, इसप्रकार ये दोनों गुण एक ही वस्तुमें एक ही समय हैं, इसलिये उसे स्यात् अस्तिनास्तिरूप कहते हैं। पदार्थका स्वरूप एकान्तसे ज्योंका त्यों अर्थात् एक साथ परस्पर विरुद्ध अस्तित्व नास्तित्वादि धर्मोंका समुदाय कहा नहीं जा सकता है। जिस समय अस्ति कहते हैं, उस समय नास्तिका कहना संभव नहीं होता है और जिस समय नास्ति कहते हैं उस समय अस्तित्वका कहना नहीं

वन सकता है इसलिये उसे स्यात् अवक्तव्य कहते हैं। पदार्थ स्वचतुष्टयसे तो अस्तिरूप है और एक साथ अस्तिनास्तिरूप होनेसे (चौथे भंगके समान) कहा नहीं जा सकता है, इसलिये स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। इसी तरह परचतुष्टयसे नास्तिरूप है तो भी एक साथ अस्ति-नास्तिरूप पूर्ण स्वरूप कहनेमे नहीं आ सकता है, इसलिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य है। और पदार्थ अपने तथा परके चतुष्टयसे अस्तिनास्तिरूप है; परन्तु एक साथ अस्तिनास्तिरूप कहा नहीं जा सकता है, इसलिये स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। इस तरह ये सातों भंग स्यादवादसे सधते हैं।

पदार्थ अनेकान्तस्वरूप है। स्यात् वा कथंचित् शब्दका आश्रय लिये विना किसी भी पदार्थका यथार्थ स्वरूप नहीं कहा जा सकता है। अमुक पदार्थ 'ऐसा ही है' इस प्रकार कहनेसे पदार्थस्थित अन्य धर्मोंका सर्वथा निपेध होता है इसलिये ऐसा कहना ठीक नहीं; किन्तु 'ऐसा भी है' इस प्रकार कहा जा सकता है क्योंकि इससे अन्य धर्मोंका सर्वथा अभावसिद्ध नहीं होता फिर भी प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अपेक्षासे कहा जाता है। जहां अपेक्षा नहीं है, वहीं मिथ्या है (असत्य है)।

सर्वज्ञके ज्ञानकी महिमा।

जीव हैं अनंत एक जीवके अनंत गुण;
एक गुणके असंख परदेस मानिए।

और उनसे अनन्तगुणे अगामी कालमे होवेंगे। इन सवको एक समयमे जो जानता देखता है, उसे सर्वज्ञदेव कहते है।

कविका अन्तिम कथन।

छप्पय।

चरचा मुखसौं भनैं, सुनैं प्रानी नहिं कानन।
केई सुनि घर जाहिं, नाहिं भाखैं फिरि आनन॥
तिनिकौं लखि उपगार, सार यह सतक बनाई।
न सुनत है बुद्ध, सुद्ध जिनवानी गाई॥
नेक सिद्धांतकौ, मथन कथन द्यानत कहा।
जीवकौं नाव है, जीवभाव हम स-
रदहा॥ १०३॥

गदिमें मुंहसे यदि चर्चा की जाती है-
ती है, तो वहुतसे प्राणी कान
और वहुतसे सुनकर घर चले
में फॅस जाते हैं, इसलिये फिर कभी
नहीं लाते हैं। ऐसे लोगोंका उपकार
मझकर कि इससे उनका लाभ होगा—वे
लेगे, तो चरचाको नहीं भूलेंगे—यह सारूप
तक वनाया है। इसके पढ़ने सुननेसे वुद्धि वढ़ेगी।
शुद्ध जिनवाणी कही गई है। इस चरचा शतकमें

परिशिष्ट ।
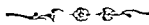
पृष्ठ ११२–क्षेत्रपरावर्तनका खुलासा स्वरूप —

कोई सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव जघन्य अवगाहनाके शरीरको धारण करके मेरुके नीचे लोकके मध्यभागमें इसप्रकार जन्म धारण करे कि जिसमे उक्त जीवके मध्यके आठ प्रदेश लोकके मध्यके आठ प्रदेशोंमें आ जायँ । इसके बाद आयु पूर्ण होनेपर मर जाय । फिर ससारमे भ्रमण कर किसी कालमें वहीं उसी प्रकार जन्म ले, मरकर फिर ससारमे भ्रमणकर वहीं उसी प्रकार जन्म ले । इस प्रकार भ्रमण करता करता असख्यात बार वहीं उसी प्रकार जन्म ले । इसके बाद एक प्रदेश आगेके क्षेत्रमे जन्म ले । इसी प्रकार श्रेणीबद्ध क्रमसे एक एक प्रदेश बढ़ता हुआ लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेशोंमे जन्म ले । क्रमरहित प्रदेशोंमे जन्म लेना इसमे शामिल नहीं होता । इस तरह जितने कालमे वह जीव अपने जन्मद्वारा लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेश पूरे करे, उतने कालको उनका एक क्षेत्रपरावर्तनकाल समझना चाहिए ।

पृष्ठ ११२–पुद्गलपरावर्तनका खुलासा स्वरूप —

इसके दो भेद हैं एक नोकर्मपुद्गलपरावर्तन और दूसरा कर्मपुद्गलपरावर्तन । औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीरों और छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको नोकर्म और ज्ञानावरणादि कर्मोंकी पुद्गलवर्गणाओंको कर्म कहते हैं । यह जीव प्रत्येक समयमें कर्म नोकर्मवर्गणाओंको ग्रहण करता करता रहता है । मान लो कि किसी जीवने किसी एक समयमें जो नोकर्मवर्गणायें ग्रहण की वे दूसरे तीसरे आदि समयोंमें निर्जीर्ण हो गईं । अब उन वर्गणाओंकी जितनी सख्या थी और उनमें जितना स्निग्ध रूक्ष वर्णादिक तथा उनका तीव्र मध्यम मन्द परिणाम था, कालान्तरमें वे ही वर्गणायें उतनी ही सख्या और परिणामको लिये जब यह जीव ग्रहण करेगा, तब एक नोकर्मपुद्गलपरावर्तन होता है ।

इसी प्रकार किसी जीवने विवक्षित समयमें ज्ञानावरणादि कर्मोंके योग्य पुद्गल-वर्गणा ग्रहण की और वे द्वितीय तृतीयादि समयोंमें छूट गईं। अब उन वर्गणा-